मानव-अधिकार

—मानव-अधिकारो के सघर्ष की कहानी—

विष्णु प्रभाकर

राजदेव त्रिपाठी

१९६०

सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मन्त्री, सस्ता साहित्य मण्डल,
नई दिल्ली

यूनेस्को के सहयोग से

पहली बार १९६०
मूल्य
एक रुपया

मुद्रक
सत्यपाल धवन,
दी सैंट्रल इलैक्ट्रिक प्रेस,
दिल्ली

प्रकाशकीय

मानव-अधिकार ससार की सबसे मूल्यवान वस्तुओ मे से है और हमारा इतिहास बताता है कि उसके सरक्षण के लिए चिरकाल से कितने भारी प्रयत्न हुए है और आज भी हो रहे है। यातायात के साधनो ने दुनिया को बहुत छोटा बना दिया है और मानव की चेतना मानवीय अधिकारो के बारे मे आज बडी ही प्रबुद्ध होगई है।

इस पुस्तक मे, सक्षेप मे, बताया गया है कि इस दिशा मे ससार मे कहा-कहा और क्या-क्या प्रयत्न हुए है और किन-किन प्रमुख व्यक्तियो तथा सस्थाओ ने इस यज्ञ मे अपना हविर्भाव अर्पित किया है। राष्ट्रसघ के प्रयासो का भी इसमे उल्लेख हुआ है। पाठक जानते है कि इस अत-राष्ट्रीय सस्था ने इस क्षेत्र मे बडा महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

मानव-अधिकार का प्रश्न बुनियादी प्रश्नो मे से है और प्रत्येक वर्ग तथा स्थिति के मनुष्य के साथ इसका सबध आता है। हमे विश्वास है कि इस पुस्तक को जो भी पढेगा, उसीको बडी उपयोगी विचार-सामग्री प्राप्त होगी।

— मत्री

विषय-सूची

मानव-अधिकार

: १ :

मानव-अधिकार की पृष्ठभूमि

आज से कोई ढाई हजार वर्ष पुरानी बात है। भगवान बुद्ध ने तब एक कहानी सुनाई थी कहते है कि पहले धरती नही थी। सब कही पानी-ही-पानी था। न चाद था, न सूर्य, न नक्षत्र थे, न तारे। बस चारो ओर अधेरा-ही-अधेरा। उस अधेरे मे रात की बन आई थी। दिन के दर्शन दुर्लभ थे। जिस तरह दिन-रात जैसी कोई चीज नही थी, उसी तरह न पखवारे थे, न महीने, न ऋतुए थी, न वर्ष। उस समय स्त्री-पुरुष तो क्या होते, किसी भी प्रकार के जीवन का जन्म नही हुआ था।

फिर जिस प्रकार गर्म दूध ठडा होने पर उसपर मलाई जम जाती है उसी प्रकार पानी की सतह पर धरती फैली। आकाश में चाद और सूरज प्रकट हुए। धीरे-धीरे दिन और रात, पक्ष और मास तथा ऋतु और वर्ष मालूम पडने लगे। फिर भद्रलता नामक एक स्वादिष्ट लता हुई। उसके बाद प्राणियों का जन्म हुआ। प्राणी भद्रलता खाने लगे। इस प्रकार बहुत समय बीत गया और तब बिना बोया-जोता चावल हुआ। उस बिना बोये-जोते चावल को प्राणी बहुत दिनो तक खाते रहे। तब कही स्त्री-पुरुष की परस्पर आखे मिली और उनमे राग उत्पन्न हुआ। वे घर बनाकर साथ रहने लगे। साथ रहने लगे तो दोनो के सन्तान हुई। इस प्रकार सृष्टि का क्रम चल पडा।

लोग खाने के लिए सवेरे-शाम दोनो समय चावल लेने जाते

थे। एक दिन एक आलसी आदमी ने सोचा, "शाम के लिए फिर आना पडेगा। क्यो न दोनो समय के लिए अभी लेता चलू ?" बस, वह दोनो समय के लिए चावल ले आया। शाम को उसका एक साथी उसके पास आया और बोला, "चलो, चावल ले आये।" आलसी आदमी ने उत्तर दिया, "मै तो सबेरे ही दोनो समय के लिए ले आया था। यह सुनकर दूसरा आदमी चला गया और जब वह लौटा तो उसके हाथ मे दो दिन के लिए चावल थे। उसको दो दिन का चावल लाते देखकर तीसरा आदमी चार दिन के लिए ले आया। इस प्रकार सग्रह करने की भावना ने जन्म लिया।

कहते है, इस पाप के कारण ही चावल के ऊपर भूसी होने लगी और उसका नाम पडा धान। यही नही, तभी से चावल का अपने-आप उगना भी बन्द होगया। लोगो को खेती करनी पडी। खेत बने तो मेड बाधने की बात सूझी और एक दिन लोगो ने पाया कि सबके खेत अलग-अलग होगये है।

फिर क्या हुआ। उनमे एक लालची आदमी भी था। एक दिन वह अपने खेत से धान न लाकर दूसरे के खेत से ले आया। किसीने उसे ऐसा करते देख लिया। वह पकडा गया। ऐसा पहली बार हुआ था, सो लोगो ने उसे समझाया, "देखो, भाई, ऐसा करना पाप है। फिर कभी ऐसा न करना।" उसने सबके सामने वचन दिया, "फिर ऐसा नही करूगा।" किन्तु लालच क्या आदमी को आसानी से छोडता है ? उसने बार-बार चोरी की। लोगो ने उसे पकडकर मारा-पीटा और इस प्रकार मानव-समाज मे चोरी, झूठ और मार-पीट का आरम्भ हो गया।

धीरे-धीरे ये बुराइया बढती चली गई। उस समय सभी प्राणी स्वतन्त्र थे। कोई किसीको अपनी बात मनवाने के लिए बाध्य नही कर सकता था। लेकिन दोष जब बहुत बढ गये तो समाज मे परेशानी पैदा होगई। लोग सोचने लगे और एक दिन उन्होने निश्चय किया कि किसी ऐसे आदमी की खोज की

जाय जो सबको अच्छे कामो मे लगाये, बुरे कामो से रोके और सबकी ओर से समाज पर नियत्रण रखे। ढूढते-ढूढते वे एक ऐसे आदमी के पास गये जो उन्हे सबसे अधिक बुद्धिमान, सुन्दर और शक्तिशाली लगा। उन्होने उससे कहा, "आप बल, विद्या और बुद्धि मे हम सबसे श्रेष्ठ है। आप हम सबको उचित कार्यो मे लगाइये, अनुचित कार्यो से रोकिये, जो निन्दा के योग्य है, उनकी निन्दा कीजिये, जो अपराधी है उन्हे दण्ड दीजिये। आपको अपने भोजन के लिए चिन्ता करने की आवश्यकता नही है। हम अपने धान का एक भाग आपके लिए निकाल दिया करेगे।"

उस तेजस्वी व्यक्ति ने लोगो की बात मान ली। चूकि वह सर्वसम्मति से चुना गया था, इस कारण उसका नाम हुआ महासम्मत। जैसा कि लोगो ने कहा था, सभी खेतो मे उत्पन्न धान का एक भाग उसे नियम से मिलने लगा। जैसे-जैसे समाज पर उसका नियत्रण बढा, खेतो पर भी उसका अधिकार बढा और एक दिन वह उन खेतो का अधिपति बन गया। खेतो अर्थात् क्षेत्रो का अधिकारी बनने के कारण वह 'क्षत्रिय' कहलाया। उचित-अनुचित का भेद बतलाते हुए वह धर्म से सबका रजन करता था, अतः उसका तीसरा नाम 'राजा' पडा।

कहानी इतनी ही है। यह सब ऐसे ही हुआ हो, यह आवश्यक नही है। यह भी आवश्यक नही कि यह एक निश्चित समय मे हुआ हो। राजा का जन्म होने मे न जाने कितने युग लगे होगे, पर यह कहानी मानव और मानव-समाज के निर्माण के साथ-साथ, उसके कर्त्तव्यो और अधिकारो की पृष्ठभूमि पर अच्छा प्रकाश डालती है। किस प्रकार समाज मे शान्ति और व्यवस्था बनाये रखने के लिए मानव को अपने ही समान दूसरे मानव की अधीनता स्वीकार करनी पडी, किस प्रकार अनुशासन के नाम पर उसे नियमो का जूआ अपने कधो पर रखना पडा और दण्ड भोगने के लिए बाध्य होना पड़ा,

किस प्रकार वैयक्तिक स्वार्थ के कारण वह अपने अधिकार खोता गया, इन बातो का बहुत-कुछ आभास इस कहानी से मिल जाता है ।

फिर युग बीते । देखते-देखते सर्व-सम्मति से चुना हुआ यह व्यक्ति समाज द्वारा दी गई सत्ता का उपयोग केवल समाज के हित के लिए न करके अपने हित के लिए करने लगा । नेता शासक बन गया । समाजसत्ता राजसत्ता मे बदल गई और इस प्रकार राजा एव प्रजा अथवा शासक एव शासित, इन दो वर्गो की सृष्टि हुई । राजा अपनी सत्ता और शक्ति का उपयोग जिस प्रकार बाहरी शत्रुओ के विरुद्ध करता था, उसी प्रकार समाज के भीतर प्रजा के विरुद्ध भी करने लगा । राजसत्ता के इस अनुचित उपयोग के प्रति मानव का चिंतित होना स्वाभाविक था । इस चिन्ता के कारण ही मानव-अधिकार का जन्म हुआ ।

बाहरी शत्रुओ से रक्षा करने और आन्तरिक उपद्रवो को दबाने के लिए राजा ने धीरे-धीरे कैसे सैन्य-बल का सहारा लिया, यह लम्बी कहानी है । लेकिन एक दिन ऐसा हुआ कि यह सैन्य-बल भी उसकी सहायता करने मे असमर्थ हो उठा, विशेषकर समाजगत बुराइयो को दूर करने मे वह सफल न हो सका । सृष्टि के आरम्भ से ही मानव एक ऐसी शक्ति मे विश्वास रखता आ रहा था जो उसके ज्ञान की सीमा से बाहर थी । उस शक्ति को उसने दैवी-शक्ति कहकर पुकारा । कालान्तर मे उसी दैवी-शक्ति से नाना प्रकार के अनुष्ठानो और विधि-विधानो का जन्म हुआ । एक दिन इन सबका सामूहिक नाम हुआ 'धर्म' । प्रारम्भ मे धर्म का अर्थ कर्त्तव्य था, पर आगे चलकर वह दूसरे लोको के कर्त्तव्य तक ही सीमित रह गया । धीरे-धीरे इस धर्म का प्रयोग समाजगत बुराइयो को दूर करने तथा उचित-अनुचित का निरूपण करने के लिए होने लगा । इन सबका आधार था भय ।

पहले तो राजा ने सैन्य-बल और धर्म-बल, इन दोनो को

अपने हाथ मे रखा, किन्तु धीरे-धीरे उसका काम बहुत बढ गया। तब उसने धर्म-बल को एक ऐसे वर्ग के हाथ मे सौप दिया जो आगे चलकर पुरोहित-वर्ग कहलाया। अब शासन का कार्य राजा और पुरोहित दोनो के सहयोग से चलने लगा। प्रजा के धार्मिक विश्वास का लाभ उठाते हुए पुरोहित-वर्ग ने राजा को ईश्वर का अश घोषित कर दिया। बाद मे वह ईश्वर का प्रतिनिधि कहलाने लगा और पुरोहित-वर्ग ने उसमे दैवी अधिकारो की स्थापना की। इसके बदले मे राजा ने आश्वासन दिया कि वह पुरोहित-वर्ग की स्वीकृति के बिना राज्य का कोई भी कार्य नही करेगा। इस प्रकार धर्म-सत्ता, राजसत्ता पर हावी होगई। मानव की पराधीनता मे एक और कडी जुड गई। वह राज-शक्ति और धर्म दोनो के अधीन होगया। इस धर्म के कारण समाज मे नये-नये वर्गो अथवा वर्णो की सृष्टि हुई। प्रारम्भिक काल मे आर्य शब्द का अर्थ था 'खेती करनेवाला', लेकिन अब उसका अर्थ हुआ 'कुलीन'। हमारे ही युग मे इस कुलीन (आर्य) शब्द को लेकर हिटलर ने जाति की श्रेष्ठता का नारा लगाया था और नाजीज्म (नात्सीवाद) की स्थापना की थी। उसका जो परिणाम हुआ, वह स्पष्ट है।

जब समाज वर्णो मे बट गया तो उनमे ऊच-नीच का भेद-भाव भी पैदा हुआ। उसी भेद-भाव के आधार पर समाज मे नये नियम बने। प्रारम्भ मे पुरोहित, सिपाही, व्यापारी सभी धरती जोतते थे और पुरोहितो को कोई विशेष अधिकार हासिल नही थे, लेकिन धीरे-धीरे जब उनका सम्पर्क दूसरी जातियो से हुआ, जो रग और इसी प्रकार के दूसरे कारणो से उनसे अलग थी, तो भेद-भाव पैदा होने लगा। यही वर्ण-भेद, जिसका उद्देश्य आर्यो को अनार्यो से अलग करना था, आगे चलकर बहुत जटिल हो गया। दूसरी ओर जैसे-जैसे समाज मे नये-नये धन्धे बढने लगे, बटवारा भी आवश्यक होने लगा। इसके अतिरिक्त प्रारम्भिक काल मे जब एक देश या जाति दूसरे देश या जाति पर विजय

प्राप्त करते थे तो पराजित लोगो को बिल्कुल मिटा देते थे। फिर उन्हे दास बना लेने की प्रथा शुरू हुई। यह भी समाज मे वर्ग-भेद का एक कारण बना। ऊचे वर्गो के विशेष अधिकार माने जाने लगे और छोटे वर्ग, विशेषकर शूद्रो को, सामाजिक व्यवस्था मे सबसे नीचे का दर्जा दिया गया। प्रारभ मे यह वर्ग-भेद बहुत जटिल नही था, किंतु आगे चलकर जब 'आर्य' शब्द का अर्थ 'कुलीन' होगया तो ऊच-नीच की भावना भी जटिल होगई।

जिस प्रकार भारत मे दास या शूद्रो का जन्म हुआ, उसी प्रकार धरती के दूसरे भागो मे दासो का व्यापार चलने लगा। यहा भी पहले तो युद्ध-बन्दियो को मार डाला जाता था, लेकिन फिर उन्हे प्राण-दान दिया जाने लगा। प्राण-दान पाकर वे प्रसन्न होते थे और दास बनना बहुत बुरा नही लगता था। लेकिन एक दिन दासो का यह व्यापार सारी धरती पर फैल गया। दास प्राप्त करने के लिए डाकुओ के दल इधर-उधर घूमने लगे। धरती पर, समुद्र में, सब कही मनुष्य को दास बनाने और फिर उन्हे गाजर-मूली के भाव बाजार म बेचने की स्पर्द्धा बढने लगी। आज हम दास-प्रथा को मानवता पर सबसे बडा कलक मानते है। लेकिन एक दिन इसी विश्व के दार्शनिको ने उसे आवश्यक माना था और एक दिन इसी विश्व के विभिन्न भागो मे मानवता के ऐसे पुजारी उत्पन्न हुए, जिन्होने इस धरती के इस कलक को दूर करने के लिए प्राणो की बाजी लगा दी।

समाज मे वर्गभेद की उत्पत्ति का एक और कारण था और वह था मनुष्य का लोभ। भगवान बुद्ध की कहानी का एक आधार यह लोभ ही है। इस लोभ के कारण सामूहिक स्वार्थ के स्थान पर वैयक्तिक स्वार्थ पैदा हुआ। सामूहिक सपत्ति टुकडे-टुकडे होकर वैयक्तिक सपत्ति मे बट गई। राजा-प्रजा समाज के सभी वर्गो मे वैयक्तिक सपत्ति बढाने के लिए होड होने लगी। यह ठीक है कि यह होड पैदा होने मे युग लग गये। परतु इसके कारण

जहा एक ओर उत्पादन मे वृद्धि हुई वहा मुनाफाखोरी भी तेजी से बढने लगी। धर्म-सत्ता भी निर्बल हो आई और धीरे-धीरे अर्थ-सत्ता उसका स्थान लेने लगी। समाज मे धनी और निर्धन,

गौतम बुद्ध

शोषक और शोषित जैसे नये वर्गो का आविर्भाव हुआ। समाज और भी बट गया। समता और सहयोगिता का जो जन्मसिद्ध अधि-

कार था, वह इस प्रकार धीरे-धीरे समाप्ति की ओर बढने लगा।

उपर हमने शूद्र-वर्ण के जन्म की चर्चा की है। कालातर मे उस वर्ण के और भी अनेक भेद होगये। उनमे एक भेद हुआ अछूत। जो वर्ण एक दिन समाज को अपरिमित लाभ पहुचाने के लिए अस्तित्व मे आया था, वह इतना हेय हो उठा कि दूसरे वर्ण उसे छूने मे भी पाप समझने लगे। ये अस्पृश्य, अन्त्यज और अछूत एक दिन अपना सब अधिकार खो बैठे और जीवन-निर्वाह के लिए सवर्णो की दया पर निर्भर होने को विवश होगये। ऐसी स्थिति मे अधिकार का प्रश्न उठना बहुत ही स्वाभाविक था।

आदिकाल मे स्त्री और पुरुप के अधिकार एक समान थे, बल्कि यह कहना होगा कि स्त्री का अधिकार पुरुप से कुछ अधिक ही था। इस बात के प्रमाण भी मिलते है कि पहले समाज का निर्माण मातृमूलक समाज के रूप मे हुआ था। वश मा के नाम से चलता था। योद्धा और शिकारी होते हुए भी आदि-मानव ने स्त्री का प्रभुत्व स्वीकार करने मे कोई आपत्ति नही की थी। लेकिन एक दिन ऐसा हुआ कि न केवल समाज ही पितृमूलक हो-गया, अपितु नारी का दर्जा बहुत नीचा माना जाने लगा। यह सब कैसे हुआ, इसके अनेक कारण है। लेकिन प्रारभिक काल की एक कहानी इस प्रक्रिया के प्रारभ पर अच्छा प्रकाश डालती है। नारी एक दिन मा बनी और मा बनने के लिए उसे घर मे रहना पडा। शक्ति मे वह कम नही थी। उन्ही दिनो की बात है। एक दिन वह अपनी कदरा मे बैठी हुई थी। पुरुष बाहर था। अचानक एक शेर आ गया। नारी ने उसे पहले देखा और जैसाकि पहले भी करती थी उसे मार भगाने के लिए झपटी, तभी पुरुष की दृष्टि भी शेर पर पडी। उसने शेर को देखा, नारी को देखा। न जाने क्या हुआ, वह बोल उठा, "नही-नही, तुम भीतर बैठो। मै ही इसे ठिकाने लगाये देता हू।"

वह शेर पर टूट पडा। उसके जबडो मे हाथ डालकर उसे फाडकर रख दिया। स्त्री ने राहत की सास ली। आखो मे प्रेम

की ज्योति लिये उसने पुरुष को देखा। क्या कोई विश्वास कर सकता है कि उसी दिन से नारी के घर मे रहने की नीव पडी ? वह घर की स्वामिनी बनी। वेदो मे 'घर की रानी' कह कर उसका सम्मान किया गया है। लेकिन एक दिन यही सम्मान उसकी दासता का कारण बन गया। और जहा दासता है, वही तो अधिकार का जन्म होता है।

सच तो यह है पशु-पालन, कृषि और शिल्प का ज्ञान हो जाने के बाद मानव अपने अधिकारो के प्रति अधिक जागरूक होता गया। नारी को 'घर की रानी' बनाकर उसने उसे चूल्हे-चक्की मे फसा दिया और वह बाहर का स्वामी होने के साथ-साथ घर का स्वामी भी बन गया। स्त्री की स्थिति गिरती चली गई और मानवता के इतिहास मे एक वह दिन भी आया जब धर्म और पातिव्रत के नाम पर उसे मृत पति के साथ जीवित जल जाने का आदेश दिया गया। एक दिन उदर-पूर्ति के लिए वह अपने शरीर का सौदा करने के लिए भी विवश हुई।

इस प्रकार स्वतन्त्रता और समता का जन्मजात अधिकारी मानव स्वार्थ और लोभ के वश मे हो गया। अपनी इस दुर्बलता के फलस्वरूप वह विभिन्न वर्गो, वर्णो और जातियो मे बट गया। परतत्रता और विषमताओ ने उसे जकड लिया। मानव-अधिकार की पृष्ठभूमि मे ये विषमताए ही है। इन विषमताओ के कारण जहा एक ओर सभ्यता का विकास हुआ, वहा मानव अपने अधिकारो के प्रति भी सजग हुआ।

: २ :

मानव-अधिकारों की रूपरेखा

समाज का निर्माण होने से पहले मनुष्य दूसरे जीवो की भाति स्वतत्र था। वह कुछ भी कर सकता था और कही भी विचर सकता था। किन्तु जब समाज का निर्माण हुआ तो उसे इस बात का ध्यान रखना पडा कि उसकी स्वतत्रता के कारण समाज के दूसरे लोगो को कोई असुविधा या हानि तो नही होती। इसलिए अपनी ही स्वतत्रता को मर्यादित करने के लिए उसने स्वयं कुछ नियम बनाये। उन नियमो का पालन करना उसके लिए आवश्यक होगया। वे नियम जहा उसको उसके कर्तव्यो का बोध कराते थे, वहा समाज मे अपने विचार व्यक्त करने और कार्यकलाप करने के लिए उसे कुछ स्वतत्रता भी देते थे। कालातर मे इसी स्वतत्रता का नाम अधिकार हुआ। कह सकते है कि कर्तव्य के दूसरे पहलू को ही अधिकार की सज्ञा दी गई। एक कथा आती है कि एक मनुष्य सडक पर खडा होकर घूसा चला रहा था। अचानक दूसरे आनेवाले व्यक्ति के वह घूसा लगा। उस व्यक्ति ने पहले व्यक्ति को डाटा। पहले व्यक्ति ने कहा, "मै कुछ भी करने को स्वतत्र हू।" दूसरे ने कहा, "ठीक है। मै भी स्वतत्र हू।" और उसने अपने हाथ का डडा चलाना शुरू कर दिया। तब उस पहले व्यक्ति को स्वतत्रता का अर्थ मालूम हुआ। और इस प्रकार कर्तव्य तथा अधिकार का सबध स्थापित हुआ।

स्वतत्रता जन्म-सिद्ध अधिकार है। मनुष्य ही नही, पशु-पक्षी भी उसके नष्ट हो जाने पर दुखी होते है। फारस के एक व्यापारी के पास एक सुदर तोता था। वह भारत का रहनेवाला था।

एक बार वह यात्री भारत जाने लगा। जाते समय उसने तोते से पूछा "तेरेलिए वहा से क्या लाऊ ?" तोते ने कहा "वहा तुझे तोते दिखाई देगे। उनसे मेरी दशा का वर्णन करना और मुक्ति के लिए परामर्श मागना। कहना, यह कहा का न्याय है कि मै बदी हू और तुम हरे-भरे मैदानो मे और वृक्षो पर आनद लूटते हो।" व्यापारी भारत पहुचा। उसने वन मे कुछ तोतो को देखा और अपना घोडा रोककर अपने तोते का सदेश उन्हे सुनाया। अचानक एक तोता थरथर कापने लगा। नीचे गिर पडा और उसकी सास उखड गई। व्यापारी ने यह देखा तो वह बहुत पछताया, सोचा, यह हमारे तोते की प्रिया होगी। हाय, मैने बेचारी को मार डाला!

अपना काम समाप्त करके जब वह घर वापस लौटा तो उसके तोते ने कहा, "क्यो मेरी बात पूरी की।" व्यापारी ने उसे वह घटना कह-सुनाई और बहुत पश्चात्ताप करने लगा। तोते ने जैसे ही अपने स्वामी की बात सुनी वह भी थरथराकर गिर पडा और ठडा होगया। यह देखकर वह व्यापारी दु.ख और वेदना के मारे अपने कपडे फाडने लगा। करुण स्वर मे पुकारने लगा, "मेरे प्यारे तोते, तुझे यह क्या होगया! हाय-हाय, तू ऐसा था, वैसा था।" और कुछ देर रो-पीटने के बाद उसने तोते को पिजरे के बाहर फैक दिया। तोता तुरत उडकर एक ऊची डाल पर जा बैठा। व्यापारी चकित रह गया। तोते ने कहा, "ऐ मेरे स्वामी, इसमे चकित होने की क्या बात है। भारत के तोते ने यही तो कहला भेजा था कि मुझे स्वतत्र हो जाना चाहिए। और स्वतत्र होने के लिए मुझे मरने का बहाना करना चाहिए। मैने वही किया है। अच्छा, अब विदा होता हू। तुमने बडी दया की। मुझे अधेरी कैद से स्वतत्र कर दिया।" व्यापारी की आखे खुल गई। बोला, "तुझपर ईश्वर की कृपा हो। तूने मुझे एक नया मार्ग दिखा दिया।"

कहानी स्पष्ट है। अच्छे-से-अच्छा मेवा-मिष्टान्न, दूध और

फल पाकर भी तोता पिजरे मे सुखी नही रहता। मौका पाकर उड ही जाता है। गोस्वामी तुलसीदास ने रामायण मे स्पष्ट लिखा है—'पराधीन सपनेहु सुख नाहीं।' जब पराधीनता के कारण सपने मे भी सुख नही मिलता तो वास्तविक दुनिया मे कैसे मिल सकता है ? और मनुष्य है सुख का खोजी। सुख के लिए उसने समाज का निर्माण किया है। सुख के लिए उसने विज्ञान की अनत खोजे कर डाली। जब तोता तक स्वतत्रता छिन जाने पर सोने के पिजरे मे रहते हुए, स्वादिष्ट से-स्वादिष्ट भोजन पाते हुए, सुख का अनुभव नही करता, तो प्राणियो मे सर्वश्रेष्ठ मानव अपनी स्वतत्रता का अपहरण कैसे सह सकता है।

> **आहारनिद्राभयमैथुन च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।**
> **ज्ञान हि तेषा अधिको विशेषो ज्ञानेन हीना पशुभिस्समाना.॥**

आहार, निद्रा, भय और मैथुन ये पशु और मनुष्यो मे समान है, लेकिन मनुष्य मे ज्ञान अधिक है। ज्ञान के बिना मनुष्य पशु के समान है। इससे स्पष्ट है कि ईश्वर ने मनुष्य को सब प्राणियो मे श्रेष्ठ माना और उसके मस्तिष्क मे ज्ञान जैसी बहुमूल्य वस्तु प्रदान की। उस ज्ञान के कारण ही वह स्वतत्ररूप से अपनी मानसिक और शारीरिक शक्तियो का विकास कर सका। उस ज्ञान के कारण ही उसने स्वतत्रता की रक्षा की। सारे ससार मे मनुष्य एक समान ही पैदा होते है। समान रूप से ही उनको विकास के लिए साधन मिलते है। स्वतत्रता और समानता मानव का जन्मसिद्ध अधिकार है।

बरगद का विशाल पेड किसको प्यारा नही लगता ? उसकी छाया मे सैकडो पशु-पक्षी सुख पाते है। मनुष्य भी सुख का अनुभव करता है। लेकिन क्या कभी किसीने उसकी छाया के नीचे किसी दूसरे पौधे को पनपते देखा है ? और वही क्यो, किसी भी बडे वृक्ष के नीचे छोटा पौधा लगादे तो उस छोटे पौधे की पत्तिया पीली पड जाती है और उसकी बाढ़ रुक जाती है।

वह नष्ट हो जाता है। ऐसा क्यो होता है ? इसका कारण यह है कि नीचे लगे हुए पौधे की जीवनी-शक्ति, अर्थात् भोजन, पानी, हवा और प्रकाश ऊपरवाला बडा पेड स्वय हजम कर जाता है। छोटे पौधे को कुछ नही मिलता। इसी प्रकार बडे मनुष्य की अधीनता मे दूसरा मनुष्य अपना अधिकार खो देता है। उसके परिश्रम का फल ऊपरवाला मनुष्य हडप जाता है और वह छोटे पौधे की तरह एक दिन समाप्त हो जाता है। लेकिन मनुष्य तो पौधा नही है। उसके पास ज्ञान-शक्ति है और वह अपनी स्वतत्रता और अपने अधिकारो का हनन सहन नही कर सकता। अपने स्वत्व की रक्षा करना वह अपना सबसे पहला अधिकार मानता है। इसीलिए समाज मे यह नियम बना कि किसी भी व्यक्ति या समुदाय को, किसी दूसरे व्यक्ति या समुदाय पर किसी प्रकार का विशेष अधिकार नही मिल सकता। प्रत्येक व्यक्ति को इस बात की स्वतत्रता है कि वह अपना शारीरिक, बौद्धिक एव मानसिक विकास कर सके।

मनुष्य की स्वतत्रता की रक्षा के लिए विचारों की स्वतत्रता अनिवार्य है। ससार मे आज तक सभ्यता और संस्कृति का जो कुछ भी विकास हुआ है वह विचारो के कारण ही हुआ है। विचारो के भी हाथ-पैर होते है। वे चलते-फिरते और अपना काम करते है। वास्तव मे वे कार्यो के पूर्व-रूप होते है, अर्थात् जन्मदाता। इसलिए विचारो का बहुत महत्त्व है। विचारो का सम्बन्ध बुद्धि से है और बुद्धि पर किसी प्रकार का अकुश नही लगाया जा सकता। नाना युगो मे सत्ता के मद मे चूर मनुष्य ने ऐसा करने का प्रयत्न किया है, परन्तु वह कभी सफल नही हो सका। ब्रूनो ने घोषणा की थी—"पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है।' धर्मान्ध व्यक्तियो ने उसे जिन्दा जला दिया। लेकिन ऐसा करके क्या यह घोषणा समाप्त होगई ? नही, यह सत्य दुगुनी शक्ति के साथ फैला और एक दिन सारे ससार ने उसे स्वीकार किया। सुकरात विचार-स्वातत्र्य का प्रचारक था। वह राह-

चलते व्यक्ति से पूछा करता था—"क्या तुमने सचमुच ही सत्य को जान लिया है ?" यह पूछकर वह मनुष्य के अन्दर विचार की प्रेरणा पदा करता था। इसी बात के लिए उसे एक दिन विष का प्याला पीना पडा। लेकिन क्या कभी सत्य की खोज समाप्त
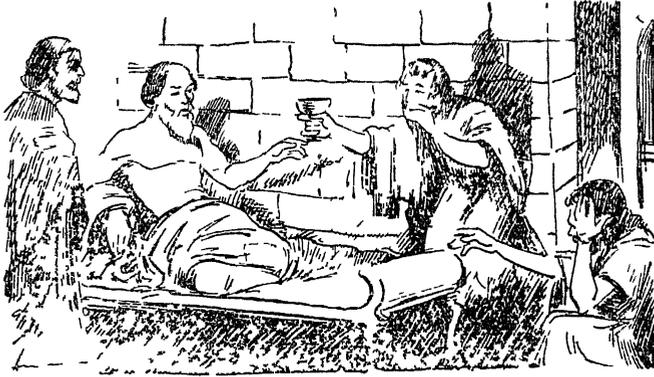
सुकरात

जिन्होंने विचार-स्वातन्त्र्य के लिए विष का प्याला पिया

हुई ? वास्तव मे जिन विचारो को दबाया जाता है, उनके प्रति लोगो की जिज्ञासा और सहानुभूति और भी बढ जाती है, इसलिए समाज मे यह नियम बना कि विचारो के व्यक्त करने पर रोक लगाना अनुचित है। जान स्टुअर्ट मिल ने कहा है—"हर आदमी को अपनी राय जाहिर करने के लिए स्वाधीनता देना उतने ही महत्त्व की बात है, जितने महत्त्व की बात उसे उस राय को अपने मन मे कायम करने की स्वतत्रता देना है। किसी को अपनी राय जाहिर न करने देने से अनुकूल पक्षवालो की हानि तो होती ही है, प्रतिकूल पक्षवालो की भी हानि होती है।"

यह बात ठीक है कि विचार अच्छे भी होते है और बुरे भी। यह भी सही है कि लोक-कल्याण के लिए अच्छे विचारो को

ही बढावा देना चाहिए, बुरे विचारो को नही। किन्तु इसके साथ यह भी सही है कि जिस विचार को हम अच्छा समझते है, सभव है, दूसरे उसे बुरा समझे। अथवा जिसे हम बुरा समझते है, दूसरे उसे अच्छा समझे। हम अपने ही गज से उस विचार को नापते है, लेकिन क्या कोई गज अबतक पूर्ण माना जा सका है? अच्छाई-बुराई का यह मापदड देश-काल की स्थिति के अनुसार बदलता रहता है। कुछ दिन पहले पश्चिम के देश जिन बातो को अच्छा समझते थे, पूर्व के देश उन बातो को पसन्द नही करते थे। आज भी यह दृष्टिकोण पूरी तरह बदला नही है, इसी प्रकार पिछली पीढी जिन बातो को अच्छा समझती थी, वर्तमान पीढी उनपर हँसती है। यह भी सभव है कि वर्तमान पीढी जिस बात को पसन्द करती है, आनेवाली पीढी उस बात को अच्छा न समझे।

इसके अतिरिक्त अच्छे और बुरे विचारो के सघर्ष से लाभ ही होता है। यदि कोई विचार अच्छा और लाभप्रद है तो लोग उसे अपना लेगे और इस प्रकार जब उसका बुरे विचार से सघर्ष होगा तो वह बुरा विचार अपने-आप नष्ट हो जायगा। अत लोकहित के नाम पर भी विचारो की स्वतत्रता का गला घोटना ठीक नही है। विचारधारा को रोकने की शक्ति शासन के पास तो रहनी ही नही चाहिए। ऐसा होने पर उसका दुरुपयोग होने की सम्भावना बहुत अधिक है।

पहले अध्याय मे हमने इस बात की चर्चा की है कि आदिम युग मे मानव-समाज मे धर्म-जैसी कोई वस्तु नही थी। कम-से-कम धर्म के जो अर्थ आज माने जाते है, वे उस युग मे अज्ञात थे। राजसत्ता के विकास के साथ-साथ धर्म की सत्ता का भी विकास हुआ और एक दिन वह मानव-जीवन का मुख्य अग हो-गया। कालान्तर मे इस धर्म को अनेक सघर्षो और परिवर्तनो मे से होकर गुजरना पडा। पर वह नष्ट नही हुआ। आज भी भूमडल के लगभग सभी देशो मे वह किसी-न-किसी रूप मे

मानव-जीवन का एक महत्त्वपूर्ण और विशिष्ट अग बना हुआ है। इतनी अधिक औद्योगिक और भौतिक उन्नति हो जाने पर भी मनुष्य धर्म से विमुख नही हुआ। लेकिन सत्ता और राज को लेकर इस धरती पर जितना रक्तपात हुआ, धर्म को लेकर उससे कम नही हुआ। उस रक्तपात का स्मरण करके आज भी रोगटे खडे हो जाते है। धर्म के नाम पर ही दयालु ईसा को सूली पर चढना पडा। धर्म के नाम पर ही हजरत मुहम्मद ने नाना प्रकार के कष्ट उठाये और उनके नवासो हसन-हुसैन को निर्दयतापूर्वक तलवार के घाट उतार दिया गया। स्पेन मे 'इनक्विजिशन' का भीषण शस्त्र रोमन चर्च ने बनाया। इससे वह उन सभीको कुचल देता था जो उसके सामने झुकने से इन्कार कर देते थे। यहूदियो को जिन्दा जलाया गया और ईसाइयो को भूखे शेरो के पिजरो मे डाल दिया गया। धर्म के नाम पर ही क्रुसेडे लडी गई। प्रारम्भ मे बहुत काल तक भारत मे धार्मिक स्वतत्रता अपेक्षाकृत बहुत अधिक रही है। लेकिन बाद मे यहापर भी कम बर्बर घटनाए नही हुई। स्वामी दयानन्द सरस्वती और गुरु गोविन्दसिह आदि अनेक महा-पुरुषो को विष का प्याला पीना पडा या तलवार के घाट उतरना पडा। साम्प्रदायिक उत्पातो की यह करुण कहानी बीसवी सदी मे भी समाप्त नही हुई। इससे स्पष्ट है कि मानव-जीवन मे धार्मिक स्वतत्रता का बहुत बडा महत्त्व है। निश्चय ही हर व्यक्ति को अपने धर्मानुकूल आचरण करने की पूर्ण स्वतत्रता होनी चाहिए। तर्क करना जितना सरल है, आश्वस्त करना उतना ही कठिन है, इसलिए किसी व्यक्ति या सम्प्रदाय को अपने धर्म या मत को किसी दूसरे व्यक्ति या सम्प्रदाय पर बलपूर्वक लादने का अधिकार नही है। एकेश्वर-वादी, बहुदेव-वादी, अनात्मवादी, आस्तिक और नास्तिक—मनुष्य को कुछ भी होने का समान अधिकार है।

इसी प्रकार प्रकृति की सारी सम्पदा के उपभोग का अधि-

कार भी सभी मनुष्यो को समान रूप से है। पहले अध्याय मे हमने देखा कि आदिम युग मे उसके उपभोग पर कोई प्रतिबन्ध नही था, किंतु जैसे-जैसे समाज और सभ्यता का विकास हुआ, लोभ और स्वार्थ की प्रवृत्ति बढती चली गई। व्यक्तिगत सम्पत्ति बढाने की होड मे स्वार्थी और चतुर व्यक्तियो ने दूसरो की सम्पत्ति हडपनी शुरू कर दी। इसके कारण समाज मे आर्थिक विषमता का आरम्भ हुआ और आज यह विषमता अपनी चरम सीमा पर है। आज की स्थिति इतनी जटिल होगई है कि चाहकर भी इस विषमता को आसानी से दूर नही किया जा सकता। लेकिन फिर भी इस बात को सभी स्वीकार करते है कि प्रत्येक मानव को यह अधिकार है कि वह अपनी जीविका का उपार्जन अच्छी तरह कर सके, गरीबी और मोहताजी से मुक्त हो सके। इसे इस प्रकार भी कह सकते है कि प्रत्येक व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह किसीकी दया पर आश्रित न रहकर आर्थिक मामलो मे आत्म-निर्भर हो सके।

भय और अत्याचार भी मनुष्य की स्वतत्रता के प्रबल शत्रु है। प्रगति के लिए इनसे मुक्ति पाना अनिवार्य है। जहा युद्ध के बादल गरज रहे हो वहा कोई सुख की नींद कैसे सो सकता है? किसी भी कारण से हो, जबतक एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य का, एक समाज को दूसरे समाज का, एक राष्ट्र को दूसरे राष्ट्र का भय सताता रहेगा तबतक मानव-जीवन मे निश्चिन्तता नही आ सकती। इस बीसवी सदी मे मनुष्य ने विज्ञान के क्षेत्र मे असीम प्रगति की है। इस प्रगति के कारण आज उसके हाथ मे अपनेको सुखी बनाने के अनन्त साधन है। लेकिन सुख और शान्ति के स्थान पर वह भयकर रूप से भयाक्रान्त ही दिखाई दे रहा है। इसीलिए चारो ओर शान्ति की पुकार मची हुई है। मनुष्य की स्वतत्रता और प्रगति का तबतक कोई मूल्य नही है जबतक उसे भय से मुक्ति न मिले।

आर्थिक, सामाजिक और सास्कृतिक सभी प्रकार के अधि-

कारो के बिना मनुष्य की स्वतन्त्रता अधूरी है। मनुष्य धनी या निर्धन, ऊचा या नीचा, बडा या छोटा होकर पैदा नही होता। इस धरती पर वह अकेला और नगा ही आता है। उसके बाद वह अपनी शक्तियो का विकास करता है। अपनी बुद्धि और अपने परिश्रम के बल पर प्रगति करता है। ये शक्तिया ईश्वर या प्रकृति द्वारा सभी मनुष्यो को समान रूप से प्राप्त होती है। किंतु समाज-रचना इस प्रकार की है कि कुछ लोग उन शक्तियो का उपयोग नही कर पाते। कुछ ऐसे भी है, जिनको इनका उपयोग करने नही दिया जाता। इस प्रकार समाज मे विषमता और भेदभाव पैदा हो जाते है। धनी-निर्धन, ऊच-नीच, बडे-छोटे, छूत-अछूत आदि का वर्गीकरण इसी विषमता और भेदभाव का दूसरा नाम है। जबतक मनुष्य इन विषमताओ पर पूरी तरह विजय नही पा लेता, इन भेद-भावो को समूल नष्ट नही कर देता, तबतक उसे अपने खोये हुए मौलिक अधिकार वापस नही मिल सकते।

: ३ :

अधिकारों के लिए संघर्ष

"समाज परिवर्तनशील है। उसमे नित्य नई बातें होना आवश्यक है। जो रीतियां या प्रथाएं अनावश्यक है उन्हे दूर करना होगा।" —प्लेटो

"रूढ़ि का विनाश ही नीति और सदाचार का प्रथम सोपान है।" —कान्त

"मानव-जाति को प्रगति की ओर ले जाने वाले सब बड़े-बड़े सिद्धान्त आरभ मे मानव-जाति के प्रचलित विश्वासो के प्रतिकूल ही थे और ऐसे व्यक्तियों द्वारा प्रतिपादित किये गए थे, जिनको तत्कालीन समाज ने अपमानित किया, सताया और फांसी तक पर चढ़ाया है।" —जोसेफ मैजिनी

"दार्शनिको ने दुनिया की व्याख्या की है, जरूरत इसको बदलने की है।" —कार्ल मार्क्स

"आदमी की सबसे ज्यादा प्यारी दौलत जिदगी है और चूंकि आदमी को जिदगी सिर्फ एक बार मिलती है, इसलिए उसको यह जिदगी इस ढग से बितानी चाहिए कि मरते वक्त कह सके—मैने अपनी सारी ताकत, अपनी सारी जिदगी, दुनिया के सबसे बड़े आदर्श 'मानव-जाति की आजादी' के लिए न्यौछावर कर दी।" —लेनिन

"जो परिवर्तन और क्राति अवश्यभावी है, उसे कोई रोक नहीं सकता। उसमे जितना विलम्ब करने की कोशिश की जायगी उतनी ही दुनिया मे हिसा और रक्तपात की वृद्धि होगी।" —जूलियन हक्सले

"यदि आप नई रोशनी को ग्रहण करने को राजी और तैयार

नही है तो जाओ पितृलोक मे पूर्व पुरुषो के साथ निवास करो। यहां ठहरने का कौन काम है ? अपनी स्वतंत्रता को बुद्ध, ईसा, मुहम्मद और कृष्ण के हाथ न बेच डालो।" —स्वामी रामतीर्थ

"कोई भी सुधार तभी हुआ है, जब साहसी व्यक्तियो ने समाज मे प्रचलित अमानवीय प्रथाएं और रस्मे स्वय ही तोड डाली है।" —महात्मा गाधी

"कोई सस्था चाहे जितनी प्राचीन हो, चाहे जितनी पवित्र हो, चाहे जितनी ही सनातन हो, मनुष्य से बडी नही हो सकती। आज हमे उसे तोड ही डालना होगा। धूल तो उडेगी ही, बालू-चूना तो झडेगा ही, ईंट-पत्थर तो खिसककर आदमी के ऊपर गिरेगे ही, यह तो स्वाभाविक है।" —शरच्चन्द्र चटर्जी

"बढे चलो।
पुरानी दुनिया के गुजरे हुए खयाल के आदर्शो को छोडकर
बढ़े चलो।
रुको मत, मुडो मत।
अतीत की मरी हुई आवाजो को सुनने के लिए थमो मत।
बढे चलो, बढे चलो।"

— रोमा रोला

"सघर्ष करो। सघर्ष के मानी जिदगी है, और जितना ही घोर सघर्ष होगा उतना ही जीवन परिपूर्ण तथा गम्भीर बनेगा। तब तुम दरअसल जिन्दा बनोगे और इस तरह की जिदगी के चंद घटे घास-फूस की तरह वर्षो के जीवन से ज्यादा गौरवयुक्त है।

"सघर्ष करो ताकि सारी दुनिया उभरता हुआ और भरा-पूरा जीवन बिता सके। विश्वास रखो कि इस सघर्ष मे तुम्हें वह आनन्द मिलेगा जो और कोई चीज नहीं दे सकती।"

—प्रिस क्रोपाटकिन

ससार के विभिन्न देशो, विभिन्न जातियो और विभिन्न युगो मे पैदा होनेवाले इन क्रान्तिकारी महापुरुषो के ये वचन इस बात के साक्षी है कि मनुष्य ने अपने अधिकारो के लिए सदा

सघर्ष किया है। दुनिया मे जितनी बडी क्रान्तिया हुई, उन सब-के पीछे विचार ही थे। क्या ये विचार स्पष्ट प्रमाणित नही करते कि सघर्ष के बिना जीवन नही है और सवर्ष मानव-जीवन का जन्म-जन्म का साथी है। मनुष्य दो बातो के लिए सघर्ष करता है—जीवित रहने के लिए और जीवित रहने के अधिकारो के लिए। आदिम युग मे उसे अपने जीवन के लिए सघर्ष करना पडा, लेकिन आगे चलकर जब उसने अपने सुख के लिए समाज की रचना की तो उसके साथ-साथ मानव-अधि-कारो को सृष्टि भी हुई। पिछले दो अध्यायो मे इसकी चर्चा हो चुकी है। अपने-आप ही अपने अधिकार समाज को सौपकर मनुष्य को फिर उन अधिकारो की प्राप्ति के लिए सघर्ष करना पडा है। यह बात बडी विचित्र जान पडती है, परतु है सत्य कि प्रभुता के मद मे मत्त होकर सत्ताधारी ने उन अधिकारो का दुरुपयोग किया था।

इस सघर्ष का रूप भिन्न-भिन्न देशो मे भिन्न-भिन्न रहा है। लेकिन इसके मूल मे एक ही बात पाई जाती है। वह बात है 'आत्मा की स्वतत्रता'। इसीका दूसरा नाम है 'व्यक्ति-स्वातत्र्य', अर्थात् प्रत्येक मनुष्य अपना, अपने शरीर का और अपने मन का मालिक है। वह अपनी स्वतन्त्रता का अपहरण नही सह सकता। ससार का इतिहास इस बात का साक्षी है कि जब-जब राजसत्ता ने अथवा समाज ने उसके उचित अधिकारो पर अकुश लगाना चाहा है तब-तब वह तिलमिला उठा है और उसने विद्रोह किया है।

किसी समय जब मनुष्य बर्बर था तो कहते है उसे नये विचार प्रकट करने के लिए अपने प्राणो से हाथ धोना पडता था। यूनान देश मे एक प्रान्त था, जहा के लोग कोक्रियन कहलाते थे। उनमे यह प्रथा थी कि जब कोई व्यक्ति नये सिद्धान्तो का पता लगाता था या कोई नया विचार प्रकट करना चाहता था तो उसे सब लोगो के सामने अपने गले मे रस्सी का फदा डालकर

खडा होना पडता था। उसके बाद वह अपनी बात को प्रमाण देकर सिद्ध करने का प्रयत्न करता था। यदि वे सब लोग उसके तर्कों और प्रमाणो से सन्तुष्ट हो जाते तब उसको मुक्त कर दिया जाता था। लेकिन यदि वे सहमत न हो पाते तो फदे की रस्सी कडी कर दी जाती थी। वह आदमी उसी समय और वही अपनी इह-लीला समाप्त कर देता था। हम नही जानते, यह कहानी सत्य है या काल्पनिक। लेकिन इस बात से कोई इन्कार नही कर सकता कि इस ससार मे समय-समय पर अनेक स्वतत्र विचारको को अपने स्वतत्र विचारो के लिए अत्याचार सहने पडे है और प्राणो से हाथ धोना पडा है। बुद्धिमान् सुकरात की चर्चा हमने पिछले अध्याय मे की है। वह ईस्वी सन् से पहले के ४७१वे वर्ष मे हुआ था। यूनान उसकी मातृभूमि थी। सत्य की खोज मे उसने अपना जीवन बिताया। लेकिन सत्य तो बहुत भयकर होता है, इसी-लिए उस काल के लोगो ने उसको न्यायालय मे घसीटा। बुद्धिमान् सुकरात ने न्यायालय मे जो बयान दिया, वह संसार मे मानव की दृढता के लिए प्रसिद्ध है। इसी बयान के अन्त मे उसने कहा था, "मै तो यह मानता हू कि जिसे मै सद्गुण समझू उसके बारे मे मुझे लोगो के सामने विवेचना करनी चाहिए। यह मेरेलिए ईश्वर का आदेश है। यही नहीं, बल्कि मुझे ईश्वर का यह भी आदेश है कि मै नैतिक नियमो की सदा शोध करता रहू। आप यह नही समझ सकते, यह मै जानता हू, लेकिन इसी कारण मै चुप नही रह सकता।" और वह चुप नही रहे। विष पीकर भी चुप नही रहे। आज भी अपने विचारो मे वह जीवित है। इसी प्रकार आज से लगभग दो हजार वर्ष पहले जब ईशु ने विचार-स्वातत्र्य की घोषणा की, पुरातन रूढियो के प्रति विद्रोह किया तो उन्हे भी उसका मूल्य अपनी जान देकर चुकाना पडा। यहूदियो ने उनपर इल्जाम लगाया कि ईशु अपनेको यहूदियो का राजा कहता है। वह अदालत मे पेश किये गए और सूबे ने उनसे पूछा, "क्या यह सच है कि तुम अपनेको यहूदियो का

राजा कहलाते हो ?" इसपर ईशु ने उसे समझाया, "मै जिस राज्य की बात करता हू, वह पृथ्वी का भौतिक राज्य नही,
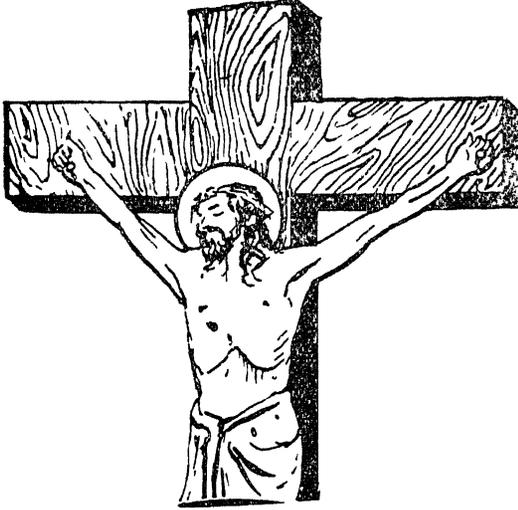
ईसा मसीह

धार्मिक अधिकारो के लिए जो सूली पर लटक गये

बल्कि प्रभु का आध्यात्मिक राज्य है। मै सत्य का साथी हू। सत्य के लिए मेरा जन्म हुआ है और सत्य-धर्म का मै राजा हू।"

लेकिन यहूदियो को इससे सन्तोष नही हुआ, क्योकि वे 'सत्य' का वही अर्थ समझते थे जो उनके लिए ठीक था और उन्होने सूबे को विवश किया कि वह ईशु को क्रॉस पर चढने की सजा दे। "अपनी आत्मा मै तुझे सौपता हू," यह कहते हुए ईशु ने अपने प्राण छोड दिये। यद्यपि मृत्यु के समय उनके पास रहने की हिम्मत दो-चार स्त्रियो और नन्हे योहान को छोडकर दूसरा कोई दिखा न सका तो भी मृत्यु के बाद उसके शौर्य का अश

उसके अनुयायियो मे उतरे विना न रहा। उसकी मृत्यु के बाद अनेक यहूदी ईसाई बने और बहुतो ने सत्य के लिए अपने प्राणो की भेट चढाई। जिस साम्राज्य-सत्ता ने उसे मृत्यु-दण्ड दिया एक दिन वह भी उसी नये धर्म मे लीन हो गई।

किस प्रकार नये विचारो (पृथ्वी सूर्य के चारो ओर घूमती है) को प्रकट करने के लिए गैलीलियो (१५६४-१६४२) को अपमानित होना पडा, इसकी चर्चा हम पीछे कर चुके है। विज्ञान के क्षेत्र मे कितने ही साहसी वैज्ञानिको को अपने प्राणो से हाथ धोने पडे और इसी बलिदान के कारण विज्ञान की इतनी प्रगति हुई।

राजसता के क्षेत्र मे भी आदिम युग से लेकर आजतक सघर्ष की यह ज्योति जगमगाती रही है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि जब-जब राजा निरकुश हुआ है, जनता ने उसके विरुद्ध विद्रोह की घोषणा की है। भारत मे राजा को कभी निरकुश अधिकार नही दिये गए, उसको ईश्वर का अश मानकर भी उसका अस्तित्व प्रजा के हित मे माना गया। राजसत्ता का गौरव प्रजा के रक्षण एव विश्व-शान्ति मे ही निहित है। महाभारत मे लिखा है—"धर्मेण व्यवहारेण प्रजाः पालय।" यही नही, महाभारत आगे कहता है—"एत्तते राजधर्माणा नवनीतम् बृहस्पतिर्हि भगवान्नयाय्यम् धर्मम् प्रशसीत।" अर्थात्, न्याययुक्त रक्षा करने से बढकर अन्य कोई धर्म नही है। कौटिल्य ने भी कहा है—"जो राजा के सुख का कारण हो, उसे राजा को मगलमय न समझना चाहिए। किंतु जिस हेतु प्रजा हर्षित रहे उसे ही राजा को कल्याणप्रद समझना चाहिए।"[1] यही नही, वैदिक युग मे तो राजा के अधिकार बहुत ही कम थे। वाल्मीकीय रामायण के अनुसार राजा देश का शासन एक मत्री-परिषद की सहायता से चलाते थे। उस परिषद मे दो

१ कौटिल्य अर्थशास्त्र, १६ वा प्रकरण, श्लोक ३६।

प्रकार के सदस्य होते थे १ अमात्यगण अर्थात् मन्त्रिमडल, २ गुरुजन या द्विजगण अर्थात् परामर्शदातृ समिति। मन्त्रियो को अधिकार था कि वे राजा को दुष्कर्मो और जनता से बरबस अधिक कर वसूल करने से रोके।

लेकिन फिर भी ऐसे उदाहरणो की कमी नही है जब वह निरकुश हो उठा है। महाभारत मे एक ऐसे ही राजा की कहानी आती है। प्राचीन काल मे बेन नाम का एक राजा था। वह राजा राजधर्म का उल्लघन कर प्रजा पर अत्याचार किया करता था। जब वह राजा प्रजा के धर्म से विचलित हो गया और उसे सताने लगा तो उसके मन्त्रियो ने उसे समझाया, लेकिन वह नही माना। ऋषियो ने समझाया तब भी नही माना। तब प्रजा उसके विरुद्ध उठ खडी हुई और ऋषियो ने उसे मार डाला, क्योकि जो राजा अपनी प्रजा को सताता है, महाभारत मे उसे पागल कुत्ते की भाति मार डालने का आदेश है। इस प्रकार नहुष, यवनराज, सुदास, सुमुख निमि तथा कस नाम के राजा अत्याचारी होने के कारण नष्ट होगये। ये राजा ऐतिहासिक है या नही, इस बात की चर्चा यहा असगत है। इनकी कथाए इसका प्रमाण है कि जब-जब राजसत्ता से सघर्ष हुआ, उसको जनता के सामने झुकना पडा है। पश्चिम के देशो मे भी राजा का सर उतार लेने के अनेक उदाहरण मिलते है। इग्लैड ने १६४९ ईस्वी मे अपने अत्याचारी राजा चार्ल्स प्रथम के विरुद्ध विद्रोह किया था और उसका सिर उतार डाला था। इसी प्रकार फ्रास ने १६वे लुई के प्रति विद्रोह किया और उसका सिर काट डाला। यह अक्तूबर १७८९ की घटना है। अभी-अभी बीसवी सदी के आरम्भ मे रूसी क्राति के समय यह घटना फिर दोहराई गई और बोल्शविको ने निरकुश जार निकोलस का सिर काट डाला। यह सब इसीलिए तो हुआ कि इन निरकुश शासको ने प्रजा के मानवीय अधिकारो को कुचलने का प्रयत्न किया था।

लेकिन हमेशा ही बादशाह का सिर काटने की आवश्यकता पडी हो, ऐसी बात नही है। उसके बिना भी प्रजा ने विद्रोह करके अपने अधिकारो की रक्षा की है। इग्लैंड मे बहुत पहले यह प्रथा थी कि अपराधियो को अदालत के सामने हाजिर किये बिना ही सजा दी जाया करती थी। बेचारे कैदी अपनी सफाई मे कुछ कह-सुन नही पाते थे। इसके लिए बहुत बार सघर्ष हुआ और इस बात के प्रमाण मिलते है कि १२ वी सदी मे लोगो को कुछ सफलता मिली। लेकिन वास्तविक सफलता मिली सन् १६८६ ईस्वी मे। इस वर्ष इग्लैंड की सरकार को बन्दी प्रत्यक्षीकरण अधिनियम (हैबियस कार्पस ऐक्ट) बनाकर अपराधी को अदालत के सामने हाजिर करने के लिए आज्ञा जारी करनी पडी।

लेकिन इग्लैंड मे 'अधिकारो' की लडाई इससे बहुत पहले आरम्भ हो चुकी थी। इस लडाई मे सबसे महत्त्वपूर्ण विजय उन्होने सन् १२१५ ईस्वी मे प्राप्त की। उस समय वहा जॉन नामक राजा का शासन था। इग्लैंड के सरदारो ने उसे टैम्स नदी के रनीमीड नाम के टापू मे घेर लिया और तलवार के जोर से डरा-धमकाकर 'मेग्ना कार्टा' अर्थात् महान् घोषणापत्र पर उससे जबरदस्ती दस्तखत करवा लिये। इस चार्टर मे ६३ धाराए थी और जनता के हर वर्ग को कुछ-न-कुछ अधिकार दिये गए थे। इसकी सबसे महत्त्वपूर्ण धारा सम्भवत यही थी कि किसीको भी न्याय देने से इन्कार नही किया जायगा, न्याय करने मे देर नही की जायगी और न न्याय बेचा जायगा। इसके अतिरिक्त कोई स्वतत्र व्यक्ति अन्यायपूर्ण रीति से न तो कद किया जायगा, न उसे सजा दी जायगी और न उसे देश मे बाहर निकाला जायगा। इस चार्टर मे यह भी खास तौर से लिखा गया था कि राजा किसी व्यापारी की सम्पत्ति या उसकी आजादी मे बिना उसके बराबरवालो की राय के दखल नही दे सकता। इसी बात से जूरी की प्रथा निकली। 'मेग्ना कार्टा'

बनने के थोडे ही दिनो बाद इग्लड मे धीरे-धीरे राष्ट्रीय सभा का विकास होने लगा।

जान मेग्ना कार्टा पर मुहर लगाते हुए

यह 'मेग्ना कार्टा' मानव-अधिकारो के लिए सघर्ष के इतिहास मे सम्भवतः सबसे बडी महत्त्वपूर्ण घटना है।

इसके लगभग साढे पाचसौ वर्ष बाद फ्रैकलिन ने लिखा—"अत्याचारियो के खिलाफ बगावत ईश्वर की फर्माबरदारी है।" यह फ्रकलिन अमरीका के स्वाधीनता सग्राम का एक महत्त्वपूर्ण नेता था। जार्ज वाशिगटन के नेतृत्व मे अमरीकी उपनिवेशो ने अपनी स्वाधीनता के लिए इग्लैड से सघर्ष

किया । वहा के तेरह राज्यो ने मौलिक अधिकारो को प्राप्त करने के लिए 'स्वाधीनता की घोषणा' की। प्रारम्भ मे उनकी पुकार यह थी—"प्रतिनिधित्व नही तो टैक्स नही", लेकिन जब यह बात स्वीकार नही की गई तो सन् १७७६ ई०
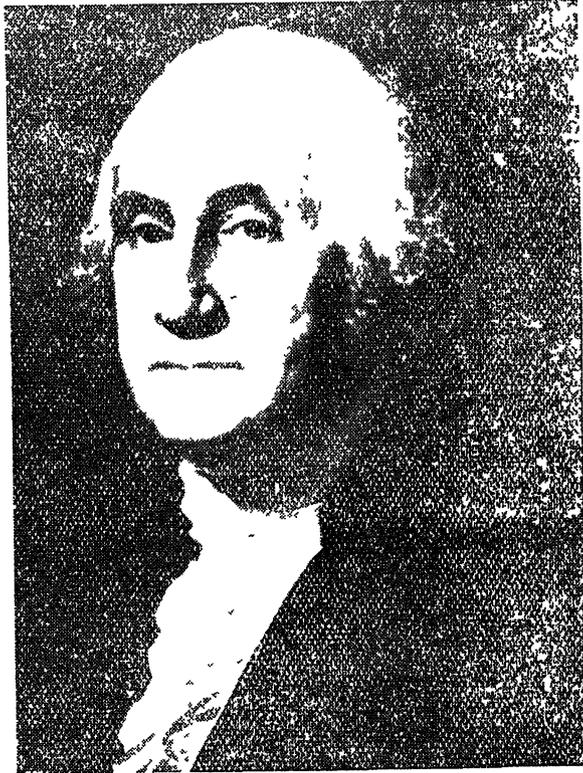
जार्ज वाशिंगटन
जिन्होने अमरीकी उपनिवेश के स्वाधीनता-सघर्ष का नेतृत्व किया

मे स्वाधीनता का घोषणा-पत्र प्रकट हुआ। उसमे कहा गया था—"जन्म से सब मनुष्य बराबर है।" इस वाक्य की पूर्ण सत्यता पर बहस हो सकती है, लेकिन यह सत्य है कि अमरीकी उपनिवेश स्वतत्र होगये। इसी प्रकार इस घटना के कुछ ही वर्ष बाद सन् १७८९ ई० मे फ्रास मे क्रान्ति का विस्फोट हुआ। वहा की जनता ने लुई १६वे के विरुद्ध विद्रोह किया और अपने अधिकारो तथा मूलभूत स्वतत्रता की घोषणा की। उनका नारा था—"समानता, स्वतत्रता, मित्रता।" इस घोषणा के पीछे वाल्तेयर, रूसो और टॉमस पेन के विचार काम कर रहे थे। टॉमस पेन एक अग्रेज था। इसने 'दी राइट्स आफ मेन" (मानव-अधिकार) नाम की एक पुस्तक लिखी और इसी कारण उसे इग्लैड से भागना पडा था। क्राति की सफलता के बाद फ्रास
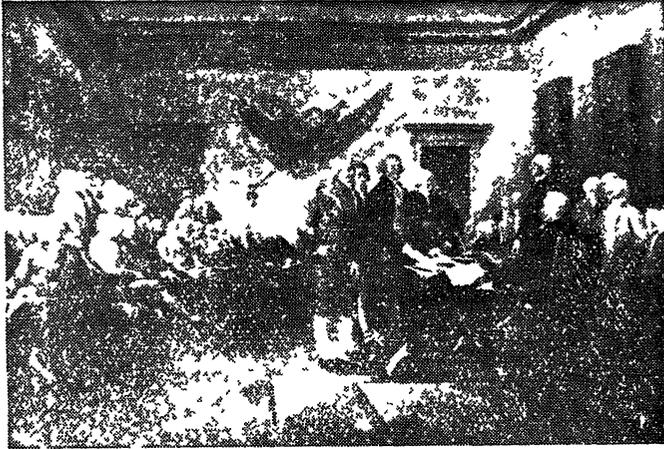
अमरीका की स्वाधीनता की घोषणा

मे जो नया शासन-विधान बनाया गया उसमे सबसे पहले जनता के आधारभूत अधिकारो की घोषणा की गई। उन अधिकारो

मे मुख्य थे—१ सब मनुष्य स्वतत्र उत्पन्न होते है, और उनके अधिकार समान है। सामाजिक भेद का आधार सार्वजनिक उपयोगिता के सिवा अन्य कुछ नही है। २ राज्य की स्वामित्व शक्ति जनता मे निहित है। ३ स्वतन्त्रता का अभिप्राय यह है कि प्रत्येक मनुष्य को वह सबकुछ करने का अधिकार है, जिससे कि किसी दूसरे को हानि पहुचने की सम्भावना न हो। ४ सरकार का प्रयोजन मनुष्यो के आधारभूत अधिकारो को सुरक्षित रखना है। ५ जनता की सार्वजनिक इच्छा ही कानून है। प्रत्येक नागरिक को अधिकार है कि स्वय या अपने प्रतिनिधि द्वारा कानून का निर्माण करने मे हाथ बटावे। ६ प्रत्येक मनुष्य के लिए कानून एक ही होना चाहिए। ७ प्रत्येक मनुष्य तबतक निरपराधी समझा जायगा जबतक कि कानून के अनुसार बने हुए न्यायालय उसे अपराधी साबित नही कर देगे। कानून के प्रतिकूल किसी मनुष्य को न कैद किया जा सकता है, न अपराधी कहा जा सकता है और न सजा दी जा सकती। ८ किसी भी मनुष्य को अपनी सम्मतियो के कारण, चाहे वे सम्मतिया धार्मिक मामलो के सम्बन्ध मे भी हो, सजा नही दी जायगी, बशर्ते कि वे सम्मितिया सार्वजनिक व्यवस्था मे बाधा डालनेवाली न हो। ९. अपने विचारो और सम्मतियो को स्वतन्त्रतापूर्वक प्रकट कर सकना मनुष्यो के सबसे अधिक बहुमूल्यो अधिकारो मे से एक है। अत प्रत्येक मनुष्य को यह अधिकार है कि वह स्वतत्रता के साथ भाषण कर सके, लिख सके और मुद्रण कर सके। परन्तु यदि वह इस स्वतन्त्रता का दुरुपयोग करेगा—दुरुपयोग किस प्रकार होता है—यह कानून स्पष्ट करेगा—तो जिम्मेदारी उसीकी होगी। १० प्रत्येक नागरिक को यह अधिकार है कि वह स्वय या अपने प्रतिनिधि द्वारा इस बात का निश्चय करने मे हाथ बटावे कि सार्वजनिक कोष के लिए कितने धन की आवश्यकता है, इस धन को खर्च किस प्रकार किया जाय, और इस धन को प्राप्त

करने के लिए कौन-कौन से टैक्स लगाये जाय, ये टैक्स किस प्रकार से वसूल किये जाय और कितने समय के लिए कायम रहे। ११ जनता को हक है कि प्रत्येक राज-कर्मचारी से उसके कार्य का ब्यौरा ले सके। १२ सम्पत्ति पर वैयक्तिक अधिकार एक पवित्र तथा अनुल्लघनीय अधिकार है।

जुल्म की चरमसीमा — दासता

यह ठीक है स्वय फ्रास मे ही इन अधिकारो की अवहेलना की गई, लेकिन साथ ही यह भी ठीक है कि मनुष्य अपने अधिकारो के प्रति सदा सजग रहा है और जब-जब अवसर मिला, उसने

पूरी क्रियात्मक शक्ति के साथ उनकी घोषणा की है। यह भी सही है कि इस क्रान्ति के कारण सारे विश्व मे धनी और निर्धन सभी व्यक्तियो के कुछ भौतिक अधिकार मान लिये गए।

इसके बाद जो मशहूर क्राति यूरोप मे हुई, वह थी सन् १९१७ ई० मे रूस की 'अक्तूबर-क्रान्ति'। प्रथम विश्व-महायुद्ध के दौरान मे जनता ने अत्याचारी जार निकोलस के विरुद्ध विद्रोह किया और उसके सलाहकार रासपुटिन को गोली से मार दिया। यह क्रान्ति रोटी मागनेवाले मजदूरो के इस नारे से शुरू हुई—'निरकुशता का नाश हो', और इसका अन्त हुआ लेनिन के नेतृत्व मे 'श्रमिको की विजय' से। अक्तूबर का यह विद्रोह सर्व-

श्रीमती हैरियट एलीजबेथस्टो
'टामकाका की कुटिया' की लेखिका

हाराओ के अपने मौलिक अधिकारो को प्राप्त करने का स्वर्णिम उदाहरण है।

दासता की प्रथा जितनी पुरानी है उतनी हृदय-द्रावक भी। मनुष्य मनुष्य पर कितना जुल्म कर सकता है, शायद यह इसकी सीमा है। एक समय था जब यह प्रथा उचित मानी जाती थी। उसके प्रति विद्रोह कब आरम्भ हुआ, यह ठीक ठीक नही मालूम, पर सबसे पहले सम्भवतः रोम मे गुलामो ने बलवा किया। वह बडी बेरहमी से दबा दिया गया था ।यह ईसापूर्व पहली सदी की बात है। ढेर-के-ढेर गुलाम जानवरो की तरह अमीरो की सम्पत्ति थे। जब रोम मे विलासिता बढ गई और बलवे होने लगे तब गरीब और पददलित गुलामो ने स्पार्टेकस नाम के एक ग्लेडिएटर के नेतृत्व मे यह असफल बलवा किया। अकेले रोम मे एक जगह छः हजार गुलाम सूली पर चढा दिये गए। लेकिन इसके बावजूद जैसे-जैसे दासो पर अत्याचार बढते रहे, वैसे-वैसे उस प्रथा के प्रति घृणा के भाव भी बढते रहे। १९वी सदी के आरम्भ मे ब्रिटिश पार्लमेंट ने गुलामी की प्रथा के खिलाफ कडे कानून पास किये। सन् १८३३ मे वहा दासता का अन्त कर दिया गया। धीरे-धीरे दूसरे देशो मे भी ऐसा ही होने लगा। लेकिन इससे गुलामो का व्यापार बन्द नही हुआ, बल्कि उन्हे और भी कष्ट होने लगा, क्योकि अब उन्हे खुले तौर पर नही ले जा सकते थे। एक अमेरिकी लेखक ने लिखा है, "कभी-कभी बर्फ से भरी गाडी पर सवार होनेवालो की तरह एक-दूसरे के ऊपर टाग-पर-टाग रखकर लाद दिया जाता था।" इसी बीच दक्षिण के राज्यो मे गुलामी की प्रथा को बिल्कुल उठा देने का आन्दोलन शुरू हुआ। इस आन्दोलन का नेता था विलियम लायड गैरीसन। सन् १८३१ ई० मे उसने यह आन्दोलन शुरू करने के लिए 'लिबरेटर' नामक पत्र निकाला था और बड़ी सख्ती के साथ इस प्रथा पर चोट की थी। उसने लिखा—"मैं बहुत उग्र हू। मै गोलमाल बात नही करूगा। मै क्षमा नही करूंगा और न तिलभर पीछे हटूगा। मेरी बात सुननी ही पडेगी।" इसी समय श्रीमती हैरियट एलीजबेथस्टो ने 'टाम काका

की कुटिया' नामक एक उपन्यास लिखा। वह बड़ा हृदय-वेधक था। पढ़कर जनता के हृदय मे आग धधक उठी और वह

राष्ट्रपति अब्राहम लिकन
जिन्होने अमरीका मे दासता का अत किया

दक्षिण के राज्यो से, जहा यह प्रथा प्रचलित थी, घृणा करने लगी। जब वह लिकन से मिली तो उन्होने कहा था—"क्या इसी छोटी-सी महिला ने वह महान् युद्ध करा दिया।" अमेरिका मे दासता को बन्द करने का श्रेय इन्ही राष्ट्रपति अब्राहम लिकन को है। बचपन मे वह अपने मित्रो के साथ एक बार यात्रा पर निकले। घूमते-फिरते हुए वह एक ऐसे स्थान पर पहुचे, जहा एक वर्णसकर तरुण नीग्रो कन्या को बोली लगाकर नीलाम किया जा रहा था।। घोडी की तरह कमरे मे दौड-दौडकर अपनी चाल व अग-प्रत्यग की हरकत बताने के लिए इस लडकी को बुरी तरह यत्रणा-पूर्वक चुटकी काटी जाती थी। बेचारी असहाय लडकी को यह सब सहना पडता था, जिससे बोली लगानेवाला उस खरीद की हुई वस्तु के अगो व हरकतो से पूर्ण सतुष्ट हो सके। लिकन ने यह सब देखा। उसका हृदय रो उठा। वह चुपचाप खडा रहा। फिर उसने कहा, "भगवान् के लिए हम लोगो को यहा से चल देना चाहिए। यदि कभी मुझे इस प्रथा पर चोट करने का अवसर मिला तो मै कसकर चोट करूगा।"

और उसे अवसर मिला।

सयुक्त राष्ट्र अमरीका का वह राष्ट्रपति (१८६१-६५) बना। दासता मिटाने के इस प्रश्न को लेकर अमरीका मे गृह-युद्ध हुआ, लेकिन लिकन पीछे नही हटा। उसे अपने प्राणो से हाथ धोना पडा, पर अमरीका से दासता सदा-सदा के लिए मिट गई।

दासता के समान ही भारतवर्ष मे अछूतो का प्रश्न था। अछूतो का जन्म कैसे हुआ, इस बात की चर्चा यहा असगत है। लेकिन यह सत्य है कि समय-समय पर उनपर अमानुषिक अत्याचार किये गए। उच्च वर्णवालो ने उनसे किसी प्रकार का सम्बन्ध नही रखा। यहातक कहा जाता है कि यदि उनके कानो मे वेद-मत्र की ध्वनि भी पड जाती थी तो उनमे शीशा भर दिया जाता था। एक स्थान पर लिखा है—"जब अछूत

ब्राह्मण को अपनी ओर आते हुए देखता है तो उसे झटपट रास्ता छोड देना पडता है और दस पग के अन्तर पर अपनी दीनता दिखाने के लिए धूल मे लेटकर प्रणाम करना पडता है, नही तो ब्राह्मण के नौकर उसे पीट-पीटकर मार डालते है।"

इस अमानुषिक व्यवस्था के विरुद्ध आदि-काल से अनेक बार विद्रोह किया गया। ऐतिहासिक रूप से सबसे पहले बुद्ध ने इस प्रथा पर चोट की। लेकिन वह चोट बहुत गहरी नही थी। अशोक के काल मे भी कुछ सुधार हुआ। उसके बाद मध्यकालीन सतो ने विद्रोह का स्वर बुलद किया। इनमे कबीर, दादू, रैदास, नामदेव और सिक्ख गुरु तथा ऐसे ही सैकडो महात्मा थे। रामानुज और रामानद ने उनका उद्धार करने के लिए स्वय बहुत कष्ट उठाये। अछूतो मे भी नद, रविदास और चोखा मेला जैसे सत हुए।

स्वामी दयानन्द
जिन्होने स्त्रियो और अछूतो के लिए सघर्ष किया

वर्तमान काल मे राजा राममोहन राय, स्वामी दयानद सरस्वती आदि सुधारको ने इस प्रथा पर गहरी चोट की, लेकिन सबसे गहरी चोट की महात्मा गाधी ने। उन्होने लाठिया खाई, पर अछूतो, अन्त्यजो को उच्च वर्ण के समान अधिकार दिलाने का आदोलन बन्द नही किया। इन सब आन्दोलनो के फलस्वरूप ही स्वतत्र भारत के सविधान मे इस प्रथा का अन्त कर दिया गया। सविधान मे दो महत्त्वपूर्ण घोषणाए की गई—१. कानून की दृष्टि मे सभी नागरिक समान है। नौकरी, कारोबार आदि मे जात-पात, लिंग व धर्म की दृष्टि से कोई भेद-भाव नही किया जायगा। २ अस्पृश्यता को कानूनी तौर पर अपराध ठहरा दिया गया।

नारी के अधिकारो की कहानी भी इसी प्रकार की है।

आज लगभग सारे ससार मे नारी पर किसी प्रकार का कोई बधन नही है। लेकिन इन बधनो को हटाने के लिए अनेकानेक महापुरुषो को कितना सघर्ष करना पडा है, कितने कष्ट उठाने पडे है, इसका लेखा-जोखा बहुत लम्बा है और बहुत करुण भी। पिछली शताब्दी मे राजा राममोहन राय और स्वामी दयानद ने पूरी शक्ति से नारी की समानता का प्रचार किया। फिर महर्षि कर्वे, पडिता रमाबाई और लाला देवराज आदि ने शिक्षा के क्षेत्र मे बडा ठोस काम किया। वस्तुत पहले महायुद्ध के बाद स्त्रियो को बहुत-से कानूनी, सामाजिक और परम्परागत बधनो से छुटकारा मिला। पूर्व मे भी तुर्की से हिदुस्तान और चीन तक जागृति की यह लहर व्याप्त होगई। नारियो ने इग्लैड मे भी मताधिकार के लिए सघर्ष किया। मिस्र मे 'नील की बेटिया' नामक सस्था ने बडा सघर्ष किया, लेकिन आज भी कई देश है, जहा स्त्रियो को मताधिकार प्राप्त नही है। इसी

महात्मा गाधी

जिन्होने मानव-अधिकारो के लिए प्राणो की आहुति दे दी

शताब्दी के आरम्भ मे जब अफगानिस्तान मे अमानुल्ला ने सुधार की आवाज उठाई तो उसे अपनी गद्दी से हाथ धोना पडा।

सन् १८५७ से लेकर १९४७ मे स्वतत्रता प्राप्त करने तक भारत मे जो सग्राम चला वह भी मानव अधिकारो के सघर्ष

इग्लैंड मे महिलाओ के समानाधिकार-आन्दोलन की जन्मदात्री स्व० श्रीमती एमेलिन पखर्स्ट

की एक गौरवमय कहानी है। सदियो तक विदेशी शासन के कारण भारत की चेतना शून्यप्राय होगई थी, लेकिन जब उसका सम्पर्क पश्चिम के नये विजेताओ से हुआ तो उसकी चेतना जाग उठी। लोकमान्य तिलक ने भारतीय जनता के अधिकारो की माग करते हुए यह घोषणा की कि "स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और हम उसे लेकर ही रहेगे।" इसी समय अफ्रीका मे मोहनदास करमचन्द गाधी का एक मसीहा के रूप मे आविर्भाव हुआ। गुलामी के बधन काट फैकने

के लिए उसने अहिसक सत्याग्रह जैसे अनूठे रास्ते का आविष्कार किया। अफ्रीका मे भारतीयो ने अपने अधिकारो के लिए जो सघर्ष किया और उस सघर्ष मे जो सफलता प्राप्त की उसने भारत के स्वाधीनता के सग्राम को बहुत बल दिया। गाधीजी भारत आये और स्वाधीनता के सग्राम की बागडोर आप-ही-आप उनके हाथो मे पहुच गई। उन्होने इस बात पर बहुत जोर दिया कि धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक स्वतत्रता के बिना राजनैतिक स्वतन्त्रता का कोई मूल्य नही है। केवल राजनैतिक स्वतत्रता को वह पूर्ण नही मानते थे। वास्तविक स्वतत्रता-प्राप्ति के लिए उन्होने खादी और हरिजन-आदोलन का सूत्रपात किया। स्वराज्य का अधिकार सबसे मौलिक अधिकार है। इसकी प्राप्ति के लिए 'भारत छोडो'-आदोलन के रूप मे अधिकारो के लिए सघर्ष अपनी चरम सीमा पर पहुच गया। अत मे यह आदोलन खत्म हुआ और भारत मे 'सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न लोकतत्रात्मक गणराज्य' की स्थापना होगई। अपने सविधान मे भारत ने मानव-मात्र को समान मानते हुए सम्राट् अशोक के धर्मचक्र को अपना प्रतीक बनाया। यह चक्र मौलिक अधिकारो पर आधारित शाश्वत नियम का प्रतीक है। इन्ही सम्राट् अशोक ने मानसेरा के छठे लेख मे लिखा था 'नस्ति हि क्रमतर सव्रलोक हितेन' अर्थात् सब लोगो के अर्थात् जनता के हित करने से अधिक करणीय कर्म कोई नही है। भारत के सविधान का भी यही लक्ष्य है। मानव-मानव के बीच की खाई को मिटाने के लिए राष्ट्रपिता गाधी को अपने प्राणो की बलि देनी पडी।

मानव-अधिकारो के सघर्ष की कहानी समाज के उन सगठनो के लिखित इतिहास के साथ-साथ शुरू होती है जहा इन्सान ने नियमो का पालन करना सीखा। लेकिन अपने खडहरो पर खडा हुआ अतीत हमे अब भी विशाल और शक्तिशाली साम्राज्यो की याद दिलाता है—उन साम्राज्यो की जिनमे, धन और ऐश्वर्य

के लिए मनुष्य की उत्कट अभिलाषाओ और महत्वाकाक्षाओ के कारण विजय की तीव्र इच्छा, निरकुशता, अत्याचार, धर्मान्धता और असहिष्णुता नग्न नृत्य करती रहती थी। इस व्यवस्था मे मनुष्य को अपने जन्मजात अधिकारो की रक्षा करने और प्रतिष्ठापूर्ण जीवन बिताने का अधिकार नही था। किंतु इन्ही अत्याचारो ने मनुष्यो को अपना मूल्य समझने की चेतना और निरकुश अत्याचारियो से मोर्चा लेने की प्रेरणा प्रदान दी। इस विराट सघर्ष की कुछ झाकी ऊपर दी जा चुकी है। १८वी और १९वी शताब्दी मे यूरोप मे जो औद्योगिक क्राति हुई, उससे भी जन-साधारण को अपने अधिकारो के लिए सघर्ष करने की प्रेरणा मिली। सघीय सतुलन के अभाव और प्रतिद्वन्द्वात्मक राष्ट्रीयता के कारण बीसवी शताब्दी के तीन दशको मे ही यूरोप को दो महायुद्धो का रणक्षेत्र बनना पडा। इन महान युद्धो का प्रभाव सारे विश्व पर पडा और लोगो मे यह चेतना पैदा हुई कि स्वतत्रता के समान 'शान्ति' भी उनका जन्मसिद्ध अधिकार है। इस अधिकार की रक्षा के लिए पहले महायुद्ध के बाद 'लीग ऑव नेशन्स' की स्थापना हुई। मानव-मानव के बीच सघर्ष न हो, इस बात का प्रयत्न लीग ऑव नेशन्स ने किया। किंतु महायुद्ध मे विजयी राष्ट्रो की बदरबाट नीति के कारण लीग अपने उद्देश्य मे सफल न हो सकी। उसका परिणाम यह हुआ कि बीस वर्ष बाद ही ससार को दूसरे महायुद्ध मे फसना पडा। पहले महायुद्ध की चोट मानव अभी भूल भी नही पाया था कि दूसरे महायुद्ध ने उसे और भी अशात और भयभीत कर दिया। इसीलिए इस महायुद्ध के समाप्त होते-न-होते विश्व के मनीषियो और राजनेताओ ने पूरी ईमानदारी के साथ अनुभव किया कि किसी-न-किसी रूप मे विश्व के एकीकरण के बिना मानव का जीवन निरापद नही है। अत उन्होने एक बार फिर 'लीग ऑव नेशन्स' के खडहरो पर एक नई अतर्राष्ट्रीय सस्था को जन्म दिया।

: ४ :

मानव-अधिकारों की घोषणा

आज से डेढसौ वर्ष पूर्व विजय के अभिमान मे नेपोलियन ने एक दिन दावा किया था—"मै सब राष्ट्रो को मिलाकर एक कर दूगा।" बाद मे जब वह हार गया और उसे सेट हेलेना मे निर्वासित कर दिया गया तो उसे अपनी इस गर्वोक्ति पर विचार करने का अवसर मिला। और यही विचार उसके हृदय मे सही रूप मे पैदा हुआ—"कभी-न-कभी परिस्थितियो के जोर से राष्ट्रो का यह मेल होगा। गाडी चल पडी है और मुझे यह दिखाई देता है कि मेरे चलाये हुए हकूमत के तरीके का खात्मा होने के बाद यूरोप मे बराबरी कायम करने का अगर कोई तरीका है तो वह एक राष्ट्रसघ के द्वारा ही हो सकता है।"

नेपोलियन से पहले भी यह विचार लोगो के मन मे पैदा हुआ था। उसके बाद भी हुआ। निरन्तर सौ वर्ष तक यह विचार-मथन चलता रहा, लेकिन इसको अमली रूप प्रथम विश्व-युद्ध के बाद ही दिया जा सका। यह विश्व-युद्ध ११ नवबर १९१८ को समाप्त हुआ। लेकिन उससे पहले ही पोप ने युद्ध बद करने की अपील की थी। उसके विचार मे ईसाई धर्म के ऊपर बोल-शेविक क्राति द्वारा जो नई विपत्ति आई थी, उसे दृष्टि मे रखते हुए यह आवश्यकथा कि ईसाई धर्म को माननेवाले यूरोपियन राज्य आपस के इस युद्ध को बद कर दे और परस्पर मिलकर अपने झगडो को निबटा ले। उसके सधि-प्रस्ताव मे जो प्रमुख बाते थी उनमे एक यह भी थी—"आपस के झगडो को निबटाने के लिए पचायत की पद्धति का आश्रय लिया जाय तथा कौन-सा

प्रदेश किस राज्य के अतर्गत हो, इसका फैसला वहा के निवासियो की सम्मति के आधार पर हो।" इस शर्त मे मानव-अधिकार की स्वीकृति की झलक दिखाई देती है। पोप के इस सधि-प्रस्ताव का उत्तर सयुक्त राष्ट्र अमेरिका के राष्ट्रपति वुडरो विल्सन ने दिया। छ महीने बाद उसने अमेरिका की काग्रेस के सामने ससार मे शाति-स्थापना के लिए अपना कार्यक्रम पेश किया। यह कार्यक्रम 'विल्सन की १४ शर्तों' के नाम से प्रसिद्ध है। ये शर्तें थीं—१ राज्य आपस की गुप्त सधियो और गुप्त समझौतो का अत कर दे। २. राज्यो के बीच मे व्यापार व अन्य आर्थिक सबधो मे किसी प्रकार की बाधा न रहे। ३ समुद्र सबके लिए स्वतत्र व खुले रहे। ४ हथियारो मे सब राज्य कमी करे। ५ उपनिवेशो का फैसला वहा के निवासियो के हितो को दृष्टि मे रखकर किया जाय। ६ राष्ट्रीय जीवन की पुन स्थापना के कार्य मे रूस की सहायता की जाय। ७ बेल्जियम की स्वतत्र सत्ता की पुन स्थापना की जाय। ८ फ्रास से जर्मन सेनाए हटा ली जाय और आल्सेस-लारेन के प्रदेश फ्रास को मिल जाय। ९ इटली की राष्ट्रीय सीमाओ का पुनर्निर्माण किया जाय। १०. आस्ट्रिया-हगरी के साम्राज्य के अधीन जो जातिया है, उनको स्वतत्र किया जाय। ११ बाल्कन राज्यो की स्वतत्र सत्ता फिर स्थापित की जाय। १२ तुर्की साम्राज्य के अधीन सब तुर्क-भिन्न जातियो को स्वतत्र किया जाय और डार्डनल्स का जलडमरूमध्य सब राज्यो के लिए खुला रखा जाय। १३ पोलैड स्वतत्र व पृथक् राज्य रहे। १४ राज्यो को एक सूत्र मे सगठित करने के लिए राष्ट्रसघ की स्थापना की जाय।

इन १४ सिद्धातो के आधार पर यदि शाति स्थापित हो सकती तो बहुत-सी समस्याए सदा के लिए हल हो जाती। लेकिन ऐसा हुआ नही। कुछ दिन बाद ही विजेताओ ने बडी आसानी से इन सिद्धातो को भुला दिया। विल्सन को एक ही चीज मिल सकी और वह थी राष्ट्र सघ। इस बारे मे सबकी

मजूरी मिल जाने पर वह और बातो मे झुक गया। सभी जानते है कि दूसरे विश्व-युद्ध के बीज वर्साई की सधि मे ही बो दिये गए थे।

राष्ट्रसघ (लीग ऑव नेशन्स) की स्थापना हुई और उससे अतर्राष्ट्रीयता की प्रवृत्ति को बहुत बल मिला। इस सघ ने न

राष्ट्रसघ का भवन

केवल राजनैतिक झगडो को निबटाने का काम किया, अपितु दास-प्रथा को नष्ट करने, स्त्रियो के क्रय-विक्रय को रोकने, अल्प-सख्यक जातियो के हितो की रक्षा करने, आर्थिक, सामजिक व साहित्यिक क्षेत्र मे सहयोग स्थापित करने और इसी प्रकार के अन्य सर्व-हितकारी मामलो के सबध मे भी बडा उपयोगी काम किया। ऐसा लगा कि विल्सन ने जो सोचा था कि जब दुनिया के सब राष्ट्र एक साथ मिलकर बैठेंगे, एक-दूसरे के सुख-दु ख की बात सुनेंगे तो मनमुटाव कम होगा, वह अब पूरा हो सकता है। सन् १९२४ ई० से लेकर सन् १९३० ई० तक राष्ट्रसघ की खासी उन्नति हुई और मानव-जाति प्रगति के मार्ग पर आगे बढी।

लेकिन अततः मानव का यह स्वप्न भी विफल होगया। राष्ट्रसघ जो चाहता था, वह न कर सका। यह ठीक है कि उसकी सफलताओ की सूची लबी है, लेकिन यह भी सच है कि वह युद्ध को न रोक सका। दूसरा महायुद्ध इसका स्पष्ट प्रमाण है। राष्ट्रसघ की इस निर्बलता और असफलता के कई कारण थे। उनमे सबसे पहला और सबसे प्रमुख कारण यह था कि सयुक्त राज्य अमेरिका शुरू से ही उसमे सम्मिलित नही हुआ। राष्ट्रसघ की स्थापना का प्रधान श्रेय अमेरिका के राष्ट्रपति विल्सन को है। परतु जब सस्थापक ही अपनी स्थापित की हुई सस्था का बहिष्कार करे तो उसका निर्बल होना स्वाभाविक है। इसका विधान भी बहुत ढीला-ढाला था। इसके अतिरिक्त अपनी बात मनवाने का इसके पास कोई साधन नही था। इसलिए यह राष्ट्रसघ दूसरे महायुद्ध को नही रोक सका, बल्कि स्वय ही समाप्त होगया।

मुसोलिनी और हिटलर आदि ने राष्ट्रसघ की तनिक भी चिता नही की और देखते देखते दूसरा विश्वयुद्ध बडी तेजी से सारे ससार मे फैल गया। बहुत शीघ्र ही समझदार लोगो ने यह अनुभव कर लिया कि प्रथम विश्वयुद्ध के समय से दूसरे विश्वयुद्ध तक मनुष्य की विनाश करने की शक्ति बहुत बढ गई

है। इसलिए यदि युद्ध रोकने का प्रयत्न नही किया गया तो मनुष्य के साथ-साथ उसकी सभ्यता और सस्कृति भी सदा-सदा के लिए समाप्त हो जायगी। उन्होने यह भी अनुभव किया कि अब समय आ गया है कि मानव-अधिकारो की दृढता के साथ रक्षा की जाय। युद्ध से, समान रूप से त्रस्त विश्व की जनता ने मानव-जाति के सगठित होने की आवश्यकता को बडी तीव्रता से महसूस किया। उन्हे इस बात से गहरा सदमा पहुचा कि लाखो-करोडो मनुष्य अपने घरो से बाहर खदेड दिये जाते है, उन्हे सताया जाता है और उन्हे मार दिया जाता है। बडी सरलता से वे अपने सारे अधिकार खो देते है। उन्होने इस बात को भी महसूस किया किया कि इन अधिकारो का हनन ही युद्ध का सबसे बडा कारण है।

प्रथम महायुद्ध की समाप्ति अमेरिका के राष्ट्रपति वुडरो विल्सन के दखल देने पर हुई थी। इस बार अमेरिका ने दूसरे विश्व-युद्ध मे और भी अधिक रुचि ली। वह मित्र-राष्ट्रो के साथ कन्धे-से-कन्धा मिलाकर लडा ही नही, बल्कि राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने इस बात का भी प्रयत्न किया कि विश्व मे स्थायी शाति स्थापित हो। विश्व-युद्ध की भयकरता को देखते हुए पहले से ही मित्र-राष्ट्रो के नेताओ ने इस बात पर विचार करना आरभ कर दिया था कि युद्ध की समाप्ति पर जब पुर्ननिर्माण का प्रश्न उठेगा तो कौन-से सिद्धात और आदर्श उनके सामने रहेगे। १९४१ मे जब चारो ओर हिटलर की विजय के नारे गूज रहे थे और ऐसा जान पडता था कि अब जल्दी ही समूचे यूरोप पर हिटलर का अधिकार हो जायगा, उस समय अमेरिका के राष्ट्रपति रूजवेल्ट और ब्रिटिश प्रधानमत्री चर्चिल की ओर से एक घोषणा प्रकाशित की गई। यह घोषणा 'एटलाटिक चार्टर' के नाम से प्रसिद्ध है। इस चार्टर मे ८ सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया गया था। उनमे एक सिद्धात यह भी था—"सब लोगो को यह अधिकार है कि वे स्वय इस बात का फैसला करे कि उनके

राज्यो की सरकार और शासन का स्वरूप किस प्रकार का हो।"

सन् १९४१ मे ही राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने उन सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया जो 'चार स्वाधीनताओ' के नाम से प्रसिद्ध है:—१ ससार मे सब-कहीं सब मनुष्यो को भाषण देने तथा किसी और प्रकार से अपने विचारो को प्रकट करने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए । २. ससार मे सब कही सब मनुष्यो को यह स्वतत्रता होनी चाहिए कि वे जैसे चाहे वैसे ईश्वर की पूजा और उपासना कर सके। ३ ससार मे सब कही सब राष्ट्रो को यह स्वतन्त्रता होनी चाहिए कि वे शाति के स.थ अपना आर्थिक जीवन बिता सके। ४ ससार मे सब कही अस्त्र-शस्त्र व युद्ध-सामग्री की मात्रा मे इस सीमा तक कमी कर देनी चाहिए कि किसी राज्य को दूसरे राज्य से आक्रमण का भय न रहे। ये सिद्धान्त निस्सन्देह बहुत ही उत्तम है और यदि इनके अनुसार ससार मे व्यवस्था हो सके तो मानव-समाज को किसी तरह का भय ही न रहे।

इस प्रकार की भावना के कारण ही जब विश्व-युद्ध समाप्त होगया तब स्थायी शान्ति स्थापित करने और विविध राज्यो को एक सूत्र मे बाधने के उद्देश्य से, सयुक्त राष्ट्रसघ (युनाइटेड नेशन्स आर्गनाइजेशन्स, यू० एन० ओ०) की स्थापना की गई। अक्तूबर सन् १९४४ मे अमेरिका के डम्बार्टन ओवस नामक नगर मे इस सम्बन्ध मे पहली कान्फ्रेस हुई, जिसमे ब्रिटेन, रूस, अमेरिका और चीन के प्रतिनिधि शामिल हुए। इस कान्फ्रेस मे सयुक्त राष्ट्र-सघ की रूप-रेखा तैयार की गई। इसके बाद फरवरी ४५ मे मित्र-राष्ट्रो की एक कान्फ्रेस क्रीमिया के याल्टा नामक नगर मे हुई। इस कान्फ्रेस मे भी इस सगठन पर विचार किया गया और यह निश्चय हुआ कि नये राष्ट्र सघ के सगठन तथा अन्य नियमो पर अन्तिम निर्णय करने के लिए सानफ्रासिसको (अमेरिका) मे एक कान्फ्रेस बुलाई जाय, जिसमे सब मित्र-राष्ट्रो के प्रतिनिधि शामिल हो। यह कान्फ्रेस

अप्रैल, १९४५ मे हुई, जिसमे सयुक्त राष्ट्र-सघ का स्वरूप अतिम रूप से स्वीकृत किया गया और इस प्रकार एक नये अन्तर्राष्ट्रीय सगठन की स्थापना हुई।

प्रारम्भ से ही लोगो ने इस बात का अनुभव कर लिया था कि मानव-अधिकार और बुनियादी स्वतत्रता की रक्षा किये बिना शान्ति की स्थापना नही हो सकती। इसीलिए जब सानफ्रासिसको मे विभिन्न देशो के प्रतिनिधि इकट्ठे हुए तो ससार के कोने-कोने से उनके पास इस आशय के ढेरो पत्र आये कि उन्हे मानव-अधिकारो की रक्षा के प्रति विशेष ध्यान देना चाहिए।

ऐसा ही हुआ। यह कान्फ्रेस २५ अप्रैल से २६ जून, १९४५ तक हुई। डम्बार्टन ओक्स मे चीन, रूस और अमेरिका के प्रतिनिधियो ने जो सिद्धान्त निर्धारित किये, उन्हीके आधार पर नई सस्था की रूपरेखा बनाई गई। २६ जून, १९४५ को सब प्रतिनिधियो ने एक चार्टर पर दस्तखत किये। इस चार्टर की ६ विभिन्न धाराओ मे मानव-अधिकारो की रक्षा की चर्चा की गई है। पुराने राष्ट्रसघ की असफलता से लाभ उठाकर इस नई सस्था को शक्तिशाली बनाने का पूरा प्रयत्न कि गया था। इस चार्टर मे यह घोषणा की गई है—"हम सयुक्त राष्ट्रसघ के लोग मानव के मूल अधिकारो मे, मानव की गरिमा और महत्त्व मे, और छोटे-बडे सभी राष्ट्रो के नर-नारियो के समान अधिकारो मे, आस्था को फिर से दोहराते है।" चार्टर की धारा एक मे घोषित इसके चार उद्देश्यो मे से एक है—"जाति, लिग, भाषा अथवा धर्म के भेद-भाव के बिना मानव-अधिकारो और सबके लिए बुनियादी अधिकारो के प्रति सम्मान को बढावा देना।" जब सब राष्ट्रो ने इस चार्टर को मान लिया तो २४ अक्तूबर १९४५ को सयुक्त राष्ट्रसघ का जन्म हुआ।

सयुक्त राष्ट्रसघ के प्रधान अग है—१ जनरल असेम्बली या महासभा, २. सुरक्षा परिषद्, ३ अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय, ४. सरक्षण परिषद् ५. आर्थिक व सामाजिक परिषद् और

६ प्रधान कार्यालय। इनमे से तीन—महासभा, आर्थिक तथा सामाजिक परिपद् और सरक्षण-परिपद्—को चार्टर के अन्तर्गत मानव-अधिकारो से सम्बन्धित कुछ जिम्मेदारिया सौपी गई है। परन्तु मानव-अधिकारो से जिस सस्था का सीधा सम्बन्ध है, वह है आर्थिक और सामाजिक परिषद्। इसके कार्यो मे एक है, "मानव-अधिकारो और बुनियादी स्वतन्त्रताओ के प्रति सम्मान को बढावा देना"। इसी कार्य या उद्देश्य को दृष्टि मे रखते हुए इस परिषद् ने १९४६ के आरम्भ मे "मानव-अधिकार आयोग' की स्थापना की। इस आयोग के १८ सदस्य थे और इनको मानव-अधिकारो की एक ऐसी घोषणा प्रस्तुत करनी थी, जिसको सब कही, सब लोग स्वीकार कर सके। वैसे इसकी कार्य-सूची काफी बडी है। इसे इन मामलो के सम्बन्ध मे अपनी तजवीजे, सिफारिशे तथा रिपोर्टे प्रस्तुत करने का आदेश है: (क) अधिकारो का एक अन्तर्राष्ट्रीय ज्ञापन, (ख) नागरिक स्वतत्रताओ पर अन्तर्राष्ट्रीय घोषणाए अथवा अभिसन्धिया, समाज मे स्त्रियो का स्थान, समाचारो की स्वतत्रता तथा इसी प्रकार के दूसरे मामले, (ग) अल्पसख्यको की सुरक्षा, (घ) जाति, लिग, भाषा अथवा धर्म के आधार पर भेद-भाव को रोकना, (ड) उपरोक्त धारा के क, ख, ग, घ मे बतलाई गई बातो के अतिरिक्त मानव-अधिकारो से सम्बन्धित कोई अन्य बात।

भेद-भाव को रोकने तथा अल्प-सख्यको की सुरक्षा के लिए १९४६ मे एक उप-आयोग भी बनाया गया। इसी समय ससार-भर मे स्त्रियो के अधिकारो की अभिवृद्धि से सम्बन्धित विशेष समस्याओ पर विचार करने के लिए "समाज मे स्त्रियो का स्थान" पर भी एक आयोग स्थापित किया गया।

'मानव-अधिकार आयोग' की पहली बैठक जनवरी १९४७ मे हुई और इसने श्रीमती फ्रेकलिन डी० रूजवैल्ट को अपना अध्यक्ष चुना। यह अमेरिका के स्वर्गीय राष्ट्रपति श्री रूजवेल्ट की पत्नी है। इनके अतिरिक्त चीन, फ्रास, लेबनान, आस्ट्रेलिया, चिली, रूस

और ब्रिटेन के प्रतिनिधियों से मानव-अधिकारों का प्रारूप तैयार करने को कहा गया। लेक सक्सैस के कार्यालय में विधानों, वक्तव्यों और सुझावों का ढेर लग गया। इन्हीं के आधार पर फ्रांस के

श्रीमती फ्रैंकलिन डी० रूजवेल्ट
जो 'मानव-अधिकार आयोग' की अध्यक्षा चुनी गईं

प्रोफेसर रेने कैसी ने, जो आयोग के उपाध्यक्ष भी थे, एक प्रारूप तैयार किया। प्रस्तावना के अतिरिक्त इसमे ४४ धाराए थी। काफी विचार-विमर्श के बाद यह प्रारूप आयोग को भेज दिया गया। आयोग ने इसे सभी सदस्य राज्यो की राय जानने के लिए प्रचारित किया। बहुत लोगो ने, बहुत-सी सस्थाओ ने, जिनमे सरकारी और गैरसरकारी सभी थी, उसपर विचार किया। समाचारो की स्वाधीनता तथा स्त्रियो के अधिकार-सम्वन्धी जो आयोग थे, उन्होने भी इसपर अपनी राय प्रकट की। इन्हीके प्रकाश मे आयोग ने इसपर फिर से विचार किया और फिर से प्रारूप तैयार किया। अब इसकी धाराए ४४ से घट कर २८ रह गई। इस प्रारूप को एक बार फिर सदस्य-राज्यो को भेजा गया। उसके बाद आर्थिक और सुरक्षा परिषद् को।

अन्त मे १९४८ के पतझड मे इसे महासभा मे प्रस्तुत किया गया। वहा क्या हुआ, यह श्रीमती रूजवेल्ट के शब्दो मे इस प्रकार है—"यह घोषणापत्र महासभा की तीसरी समिति (सामाजिक, मानवीय और सास्कृतिक) की कार्य-सूची मे शामिल किया गया था। जैसाकि आप जानते है महासभा की समितियो मे सयुक्त राष्ट्रसघ के ५८ राज्यो से एक-एक सदस्य होता है। सौभाग्य से लेबनान के डाक्टर मलिक, जो मानव-अधिकारो के आयोग के सयोजक थे, इस तीसरी समिति के अध्यक्ष थे। बहुत-से व्यक्ति वे थे, जो मानव-अधिकारो के आयोग के सदस्य भी थे। इसके अतिरिक्त बहुत-से ऐसे भी थे, जो न केवल मानव-अधिकारो के आयोग मे थे, अपितु आर्थिक और सामाजिक परिषद् मे भी थे। लेकिन ये बहुत थोडे थे। दूसरे व्यक्तियो ने इस घोषणा को एक नितात नये विचार के रूप मे लिया। मानो उनमे से किसीने भी इसको पहले कभी नही देखा था।"

इसकी व्याख्या करने की आवश्यकता नही। इस घोषणा-

पत्र पर विचार करने के लिए तीसरी समिति की ८५ बैठकें हुई। इससे स्पष्ट है कि यह विषय कितना महत्त्वपूर्ण था। अत मे ७ दिसम्बर, १६४८ को यह स्वीकार कर लिया गया और उसके तीन दिन बाद १० दिसम्बर, १६४८ को राष्ट्र-सघ की महासभा ने पेरिस मे 'पैल्यास दे शायलौत' मे मानव-अधिकारो की विश्वव्यापी घोषणा स्वीकार की। वहापर उपस्थित ५८ राष्ट्रो मे से ४८ ने घोषणा के पक्ष मे मत दिया। किसीने भी घोषणा के विरुद्ध मत नही दिया। आठ राष्ट्रो ने मतदान मे भाग नही लिया। दो गैरहाजिर थे। इस प्रकार मानव-अधिकारो की प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय घोषणा के विरुद्ध एक भी वोट नही पडा और वह स्वीकार कर ली गई। सयुक्त राष्ट्र-सघ के सदस्यो ने सब लोगो तथा सब राष्ट्रो के लिए सफलता के एक समान मापदण्ड की घोषणा की, ताकि प्रत्येक मनुष्य और समाज का प्रत्येक अग इस घोषणा को सदा अपने मन मे रखते हुए इन अधिकारो तथा स्वतत्रताओ के प्रति आदर की अभिवृद्धि के लिए काम कर सके और उनके अनुसार चलने के लिए भरसक प्रयत्न करे।

सयुक्त राष्ट्र-सघ ने अबतक कितनी सफलता प्राप्त की या बिल्कुल नही की, इसपर विवाद हो सकता है, लेकिन एक बात स्पष्ट है कि सयुक्त राष्ट्र-सघ की स्थापना इस बात का परिणाम नही थी कि राजनीति के लोग अधिक शातिप्रिय बन गये थे और न इस बात की कि विश्व की विभिन्न जातिया और राष्ट्र अचानक उन नैतिक सिद्धातो के प्रति अधिक सम्मान महसूस करने लगे जो कि उन्हे एक-दूसरे से सम्बद्ध करते है। मुख्य रूप से राष्ट्र-सघ का घोषणापत्र प्रचलित भौतिक, आध्यात्मिक, राजनैतिक और दूसरी परिस्थितियो के कारण मानवता के लिए शातिपूर्ण सहयोग की अधिक आवश्यकता का ही परिणाम है। वस्तुत सयुक्त राष्ट्र-सघ एक साधन है, जिसका सच्चाई और ईमानदारी के साथ शाति के लिए काम करने वाले हरेक इन्सान को उपयोग करना चाहिए। यह राज्यो के

हाथ मे एक ऐसा औजार है, जो शातिपूर्वक समझौतो की चर्चा और रचनात्मक सहयोग द्वारा सघर्षो को रोकने और उनका निर्णय करने के लिए आवश्यक है। पिछले १५ वर्षो मे सघ बहुत-से कामो मे सफल भी हुआ, असफल भी हुआ। लेकिन इसमे कोई सदेह नही कि भय और घृणा, विनाश और विकृति की शक्तियो के विरुद्ध सयुक्त राष्ट्र-सघ ने पूरी शक्ति के साथ काम किया है। उसने इस बात का अनुभव कर लिया कि स्थायी शाति के लिए व्यक्ति के अधिकार की रक्षा अनिवार्य है। वह राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक प्रगति के लिए भी अनिवार्य है। उसने यह भी सीख लिया कि मानवाधिकारो की अवहेलना का अर्थ अत्याचार को आमत्रित करना है, जिसका अन्त युद्ध मे ही हो सकता है।

मानव-अधिकारो की यह घोषणा इसी ज्ञान का प्रत्यक्ष प्रमाण है। इस घोषणा का मूल पाठ इस प्रकार है :

प्रस्तावना

चूकि मानव-परिवार के सभी सदस्यो के जन्मजात गौरव और समान तथा अविच्छिन्न अधिकार की स्वीकृति ही विश्व-शाति, न्याय और स्वतत्रता की बुनियाद है,

चूकि मानव-अधिकारो के प्रति उपेक्षा और घृणा के फल-स्वरूप ही ऐसे बर्बर कार्य हुए, जिनसे मनुष्य की आत्मा पर अत्याचार किया गया, चूकि एक ऐसी विश्व-व्यवस्था की उस स्थापना को (जिसमे लोगो को भाषण और धर्म की आजादी तथा भय और अभाव से मुक्ति मिलेगी) सर्वसाधारण के लिए सर्वोच्च आकाक्षा घोषित किया गया है,

चूकि अगर अन्याययुक्त शासन और जुल्म के विरुद्ध लोगो को विद्रोह करने के लिए—उसे ही अतिम उपाय समझकर—मजबूर नही हो जाना है तो कानून द्वारा नियम बनाकर मानव-अधिकारो की रक्षा करना अनिवार्य है,

चूकि राष्ट्रो के बीच मैत्रीपूर्ण सबधो को बढाना जरूरी है,

चूकि सयुक्त राष्ट्रो के सदस्य देशो की जनताओ ने बुनियादी मानव-अधिकारो मे, मानव-व्यक्तित्व के गौरव और योग्यता मे और नर-नारियो के समान अधिकारो मे अपने विश्वास को अधिकार-पत्र मे दुहराया है और यह निश्चय किया है कि अधिक व्यापक स्वतत्रता के अतर्गत सामाजिक प्रगति एव जीवन के बेहतर स्तर को ऊचा किया जाय,

चूकि सदस्य देशो ने यह प्रतिज्ञा की है कि वे सयुक्त राष्ट्रो के सहयोग से मानव-अधिकारो और बुनियादी आजादियो के प्रति सार्वभौम सम्मान की वृद्धि करेगे ,

चूकि इस प्रतिज्ञा को पूरी तरह से निभाने के लिए इन अधिकारो और आजादियो का स्वरूप ठीक-ठीक समझना सबसे अधिक जरूरी है । इसलिए, अब

'सामान्य सभा' घोषित करती है कि—

मानव-अधिकारो की यह सार्वभौम घोषणा सभी देशो और सभी लोगो की समान सफलता है । इसका उद्देश्य यह है कि प्रत्येक व्यक्ति और समाज का प्रत्येक भाग इस घोषणा को लगातार दृष्टि मे रखते हुए अध्यापन और शिक्षा द्वारा यह प्रयत्न करेगा कि इन अधिकारो और आजादियो के प्रति सम्मान की भावना जाग्रत हो और उत्तरोत्तर ऐसे राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय उपाय किये जाय, जिनसे सदस्य देशो की जनता तथा उनके द्वारा अधिकृत प्रदेशो की जनता इन अधिकारो की सार्वभौम और प्रभावोत्पादक स्वीकृति दे और उनका पालन करावे ।

अनुच्छेद १—सभी मनुष्यो को गौरव और अधिकारो के मे जन्मजात स्वतत्रता और समानता प्राप्त है । उन्हे बुद्धि और अतरात्मा की देन प्राप्त है और परस्पर उन्हे भाईचारे के भाव से बर्ताव करना चाहिए ।

अनुच्छेद २—सभीको इस घोषणा मे सन्निहित सभी अधिकारो और आजादियो को प्राप्त करने का हक है और इस मामले मे जाति, वर्ण, लिग, भाषा, धर्म, राजनीति या अन्य

विचार-प्रणाली, किसी देश या समाज-विशेष मे जन्म, सपत्ति या किसी प्रकार की अन्य मर्यादा आदि के कारण भेदभाव का विचार न किया जायगा।

इसके अतिरिक्त, चाहे कोई देश या प्रदेश स्वतत्र हो, सर-क्षित या स्वशासन-रहित हो या परिमित प्रभुसत्तावाला हो, उस देश या प्रदेश की राजनैतिक, क्षेत्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के आधार पर वहा के निवासियो के प्रति कोई भेद न रखा जायगा।

अनुच्छेद ३—प्रत्येक व्यक्ति को जीवन, स्वाधीनता और वैयक्तिक सुरक्षा का अधिकार है।

अनुच्छेद ४—कोई भी गुलामी या दासता की हालत मे नही रखा जायगा। गुलामी की प्रथा और गुलामो का व्यापार अपने सभी रूपो मे निषिद्ध होगा।

अनुच्छेद ५—किसीको भी शारीरिक यातना न दी जायगी और न किसीके भी प्रति निर्दय, अमानुषिक या अपमानजनक व्यवहार होगा।

अनुच्छेद ६—हर किसीको, हर जगह कानून की निगाह मे व्यक्ति के रूप मे स्वीकृति-प्राप्ति का अधिकार है।

अनुच्छेद ७—कानून की निगाह मे सभी समान है और सभी बिना भेदभाव के समान कानूनी सुरक्षा के अधिकारी है। यदि इस घोषणा का अतिक्रमण करके कोई भी भेद-भाव किया जाय या उस प्रकार के भेद-भाव को किसी प्रकार से उकसाया जाय तो उसके विरुद्ध समान सरक्षण का अधिकार सभीको प्राप्त है।

अनुच्छेद ८—सभीको सविधान या कानून द्वारा प्राप्त बुनियादी अधिकारो का अतिक्रमण करनेवाले कार्यों के विरुद्ध समुचित राष्ट्रीय अदालतो की कारगर सहायता पाने का हक है।

अनुच्छेद ९—किसीको भी मनमाने ढग से गिरफ्तार, नज-रबद या देश-निष्कासित न किया जायगा।

अनुच्छेद १०—सभीको पूर्णतः समान रूप से हक है कि

उनके अधिकारो और कर्त्तव्यो के निश्चय करने के मामले मे और उनपर आरोपित फौजदारी के किसी मामले मे उनकी सुनवाई न्यायोचित और सार्वजनिक रूप से निरपेक्ष एव निष्पक्ष अदालत द्वारा हो।

अनुच्छेद ११—(१) प्रत्येक व्यक्ति, जिसपर दण्डनीय अपराध का आरोप किया गया हो, तबतक निरपराध माना जायगा, जबतक उसे ऐसी खुली अदालत मे, जहा उसे अपनी सफाई की सभी आवश्यक सुविधाए प्राप्त हो, कानून के अनुसार अपराधी सिद्ध न कर दिया जाय। (२) कोई भी व्यक्ति किसी भी ऐसे कृत या अकृत (अपराध) के कारण उस दण्डनीय अपराध का अपराधी न माना जायगा, जिसे तत्कालीन प्रचलित राष्ट्रीय या अतर्राष्ट्रीय कानून के अनुसार दण्डनीय अपराध न माना जाय और न उससे अधिक भारी दण्ड दिया जा सकेगा, जो उस समय दिया जाता, जिस समय वह दण्डनीय अपराध किया गया था।

अनुच्छेद १२—किसी व्यक्ति की एकान्तता, परिवार, घर या पत्र-व्यवहार के प्रति कोई मनमाना हस्तक्षेप न किया जायगा; न किसीके सम्मान और ख्याति पर कोई आक्षेप हो सकेगा। ऐसे हस्तक्षेप या आक्षेपो के विरुद्ध प्रत्येक को कानूनी रक्षा का अधिकार प्राप्त है।

अनुच्छेद १३—(१) प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्येक देश की सीमाओ के अदर स्वतत्रतापूर्वक आने, जाने और बसने का अधिकार है। (२) प्रत्येक व्यक्ति को अपने या पराये किसी भी देश को छोडने और अपने देश को वापस आने का अधिकार है।

अनुच्छेद १४—(१) प्रत्येक व्यक्ति को सताये जाने पर दूसरे देशो मे शरण लेने और रहने का अधिकार है (२) इस अधिकार का लाभ ऐसे मामलो मे नही मिलेगा जो वास्तव मे गैरराजनैतिक अपराधो से सबधित है या जो सयुक्त राष्ट्रो के उद्देश्यो और सिद्धातो के विरुद्ध कार्य है।

अनुच्छेद १५—(१) प्रत्येक व्यक्ति को किसी भी राष्ट्र-विशेष की नागरिकता का अधिकार है। (२) किसीको भी मनमाने ढग से अपने राष्ट्र की नागरिकता से वचित न किया जायगा या नागरिकता का परिवर्तन करने से मना न किया जायगा।

अनुच्छेद १६—(१) बालिग स्त्री पुरुषो को बिना किसी जाति, राष्ट्रीयता या धर्म की रुकावटो के, आपस मे विवाह करने ओर परिवार को स्थापन करने का अधिकार है। उन्हे विवाह के विषय मे वैवाहिक जीवन मे, तथा विवाह-विच्छेद के बारे मे समान अधिकार है। (२) विवाह का इरादा रखने-वाले स्त्री-पुरुषो की पूर्ण और स्वतत्र सहमति पर ही विवाह हो सकेगा। (३) परिवार समाज की स्वाभाविक और बुनियादी सामूहिक इकाई है और उसे समाज तथा राज्य द्वारा सरक्षण पाने का अधिकार है।

अनुच्छेद १७—(१) प्रत्येक व्यक्ति को अकेले और दूसरो के साथ मिलकर सम्मति रखने का अधिकार है। (२) किसी-को भी मननाने ढग से अपनी सम्मति से वचित न किया जायगा।

अनुच्छेद १८— प्रत्येक व्यक्ति को विचार, अतरात्मा और धर्म की आजादी का अधिकार है। इस अधिकार के अतर्गत अपना धर्म या विश्वास बदलने और अकेले या दूसरो के साथ मिलकर तथा सार्वजनिक रूप मे अथवा निजी तौर पर अपने धर्म या विश्वास को शिक्षा, क्रिया, उपासना, तथा व्यवहार के द्वारा प्रकट करने की स्वतत्रता है।

अनुच्छेद १९—प्रत्येक व्यक्ति को विचार और उसकी अभि-व्यक्ति की स्वतत्रता का अधिकार है। इसके अतर्गत बिना हस्तक्षेप के कोई राय रखना और किसी भी माध्यम के जरिए तथा सीमाओ की परवान करके किसी भी सूचना और धारणा का अन्वेषण, ग्रहण तथा प्रदान सम्मिलित है।

अनुच्छेद २०—(१) प्रत्येक व्यक्ति को शातिपूर्ण सभा करने या समिति बनाने की स्वतत्रता का अधिकार है। (२) किसी-को भी किसी सस्था का सदस्य बनने के लिए मजबूर नही किया जा सकता।

अनुच्छेद २१—(१) प्रत्येक व्यक्ति को अपने देश के शासन मे प्रत्यक्ष रूप से या स्वतत्र रूप से चुने गये प्रतिनिधियो के जरिये हिस्सा लेने का अधिकार हे। (२) प्रत्येक व्यक्ति को अपने देश की सरकारी नौकरियो को प्राप्त करने का समान अधिकार है। (३) सरकार की सत्ता का आधार जनता की इच्छा होगी। इस इच्छा का प्रकटन समय-समय पर और असली चुनावो द्वारा होगा। ये चुनाव सार्वभौम और समान मताधिकार द्वारा होगे और गुप्त मतदान द्वारा या किसी अन्य समान स्वतत्र मतदान पद्धति से कराये जायेगे।

अनुच्छेद २२—समाज के एक सदस्य के रूप मे प्रत्येक व्यक्ति को सामाजिक सुरक्षा का अधिकार है और प्रत्येक व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व के उस स्वतत्र विकास तथा गौरव के लिए—जो राष्ट्रीय प्रयत्न या अतर्राष्ट्रीय सहयोग तथा प्रत्येक राज्य के सगठन एव साधनो के अनुकूल हो—अनिवार्यतः आवश्यक आर्थिक, सामाजिक, और सास्कृतिक अधिकारो की प्राप्ति का हक है।

अनुच्छेद २३—(१) प्रत्येक व्यक्ति को काम करने, इच्छा-नुसार रोजगार के चुनाव, काम की उचित और सुविधाजनक परिस्थितियो को प्राप्त करने और बेकारी से सरक्षण पाने का हक है। (२) प्रत्येक व्यक्ति को समान कार्य के लिए बिना किसी भेदभाव के समान मजदूरी पाने का अधिकार है। (३) प्रत्येक व्यक्ति को, जो काम करता है, अधिकार है कि वह इतनी उचित और अनुकूल मजदूरी पाये, जिससे वह अपने लिए और अपने परिवार के लिए ऐसी आजीविका का प्रबध कर सके, जो मानवीय गौरव के योग्य हो तथा आवश्यकता-

होने पर उसकी पूर्ति अन्य प्रकार के सामाजिक सरक्षणो द्वारा हो सके। (४) प्रत्येक व्यक्ति को अपने हितो की रक्षा के लिए श्रीमजीवी सघ बनाने और उनमे भाग लेने का अधिकार है।

अनुच्छेद २४—प्रत्येक व्यक्ति को विश्राम और अवकाश का अधिकार है। इसके अतर्गत काम के घटो की उचित हद-बदी और समय-समय पर मजदूरी-सहित छुट्टिया सम्मिलित है।

अनुच्छेद २५—(१) प्रत्येक व्यक्ति को ऐसे जीवन-स्तर को प्राप्त करने का अधिकार है जो उसे और उसके परिवार के स्वास्थ्य एव कल्याण के लिए पर्याप्त हो। इसके अतर्गत खाना, कपडा, मकान, चिकित्सा-सबधित सुविधाए और आवश्यक सामाजिक सेवाए सम्मिलित है। सभीको बेकारी, बीमारी, असमर्थता, वैधव्य, बुढापा या अन्य किसी ऐसी परिस्थिति मे आजीविका का साधन न होने पर, जो उसके काबू के बाहर हो, सुरक्षा का अधिकार प्राप्त है। (२) जच्चा और बच्चा को खास सहायता और सुविधा का हक है। प्रत्येक बच्चे को, चाहे वह विवाहित माता से जन्मा हो या अविवाहित से, समान सामाजिक सरक्षण प्राप्त होगा।

अनुच्छेद २६—(१) प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा का अधिकार है। शिक्षा कम-से-कम प्रारभिक और बुनियादी अवस्थाओ मे नि शुल्क होगी। प्रारभिक शिक्षा अनिवार्य होगी। टेक्निकल, यात्रिक और पेशो-सबधी शिक्षा साधारण रूप से प्राप्त होगी और उच्चतर शिक्षा सभीको योग्यता के आधार पर समान रूप से उपलब्ध होगी। (२) शिक्षा का उद्देश्य होगा मानव-व्यक्तित्व का पूर्ण विकास और मानव-अधिकारो तथा बुनियादी स्वतत्रताओ के प्रति सम्मान की पुष्टि। शिक्षा द्वारा राष्ट्रो, जातियो अथवा धार्मिक समूहो के बीच आपसी सद्भावना, सहिष्णुता और मैत्री के प्रयत्नो का विकास होगा और शाति बनाये रखने के लिए सयुक्त राष्ट्रो को आगे बढाया जायगा। (३) माता-पिता को सबसे पहले इस बात का अधिकार है कि वे चुनाव कर सके कि

किस किस्म की शिक्षा उनके बच्चो को दी जायगी।

अनुच्छेद २७—(१) प्रत्येक व्यक्ति को स्वतत्रतापूर्वक समाज के सास्कृतिक जीवन मे हिस्सा लेने, कलाओ का आनन्द लेने तथा वैज्ञानिक उन्नति और उसकी सुविधाओ मे भाग लेने का अधिकार है। (२) प्रत्येक व्यक्ति को किसी भी ऐसी वैज्ञानिक, साहित्यिक या कलात्मक कृति से उत्पन्न नैतिक और आर्थिक हितो की रक्षा का अधिकार है, जिसका रचयिता वह स्वय हो।

अनुच्छेद २८- प्रत्येक व्यक्ति को ऐसी सामाजिक और अतर्राष्ट्रीय व्यवस्था की प्राप्ति का अधिकार है जिसमे इस घोषणा मे उल्लिखित अधिकारो और स्वतत्रताओ को पूर्णत प्राप्त किया जा सके।

अनुच्छेद २९—(१) प्रत्येक व्यक्ति का उसी समाज के प्रति कर्त्तव्य है जिसमे रहकर उसके व्यक्तित्व का स्वतत्र और पूर्ण विकास सभव हो। (२) अपने अधिकारो और स्वतत्रताओ का उपयोग करते हुए प्रत्येक व्यक्ति केवल ऐसी ही सीमाओ द्वारा बद्ध होगा, जो कानून द्वारा निश्चित की जायेगी और जिनका एकमात्र उद्देश्य दूसरो के अधिकारो और स्वतत्रताओ के लिए आदर और समुचित स्वीकृति की प्राप्ति होगा तथा जिनकी आवश्यकता एक प्रजातन्त्रात्मक समाज मे नैतिकता, सार्वजनिक व्यवस्था और सामान्य कल्याण की उचित आवश्यकताओ को पूरा करना होगा। (३) इन अधिकारो और स्वतत्रताओ का उपयोग किसी प्रकार से भी सयुक्त राष्ट्रो के सिद्धातो और उद्देश्यो के विरुद्ध नही किया जायगा।

अनुच्छेद ३०— इस घोषणा मे उल्लिखित किसी भी बात का यह अर्थ नही लगाना चाहिए जिससे यह प्रतीत हो कि किसी भी राज्य, समूह, या व्यक्ति को किसी ऐसे प्रयत्न मे सलग्न होने या ऐसा कार्य करने का अधिकार है, जिसका उद्देश्य यहा बताये गए अधिकारो और स्वतत्रताओ मे से किसीका भी विनाश करना हो।

मानव-अधिकारो की यह घोषणा विश्व के इतिहास मे, मनुष्य ने अधिकारो के लिए जो सघर्ष किया है, उसकी चरम परिणति है। लेकिन जैसाकि हम देख चुके है, इसका निर्माण आसानी से नही हो सका है। इस घोषणा मे जिन शब्दो का प्रयोग हुआ है उनके चयन मे जो कठिनाई आई है, हम उसकी ओर सकेत करना चाहते है। यह अनोखी बात है, लेकिन है सत्य। सभी राष्ट्र मानव-अधिकारो का समर्थन करने के लिए सहमत होगये थे, लेकिन इन 'दो शब्दो' का अर्थ क्या है इसके बारे मे सबके मन मे अलग-अलग तस्वीर थी। उन्होने समझौते का प्रयत्न किया, लेकिन प्रत्येक राष्ट्र की अपनी परपराए होती है, अपने रीति-रिवाज होते है। इस दृष्टि से किसी एक शब्द या वाक्य के अर्थ सबके लिए अलग-अलग हो सकते थे। यह आवश्यक नही था कि एक शब्द का अर्थ जो भारत करता था, वही इगलैड भी करे। विश्व के एक प्रदेश के मनुष्यो को जो स्वतत्रता प्राप्त है, दूसरे देशवाले उस स्वतत्रता को बुरा समझते है।

इसलिए प्रारूप मे प्रयोग किये जाने वाले प्रत्येक शब्द पर पूरी तरह से विचार किया गया और उसके जो भी अर्थ हो सकते है, उनपर चर्चा की गई। तब कही जाकर उसका प्रयोग किया गया। शिक्षा के सबध मे जो धारा है उसमे बाद मे ये वाक्य जोडे गये—'माता-पिता को सबसे पहले इस बात का अधिकार है कि वे चुनाव कर सके कि किस किस्म की शिक्षा उनके बच्चो को दी जायगी।' पूछा जा सकता है कि ऐसा क्यो किया गया? नीदरलैड के प्रतिनिधि ने इस धारा पर विचार करते समय समिति का ध्यान हिटलर के युवक आन्दोलन की ओर दिलाया था। नाजी शासन मे बच्चो को जातीय घृणा और युद्ध की प्रशसा का पाठ पढाया जाता था। जब उनके माता-पिता ने उन्हे इसके विरुद्ध सीख देने का प्रयत्न किया तो उन बच्चो ने अपने माता-पिता के विरुद्ध शिकायत की। हमारे अपने देश मे भी एक ऐसी सस्था है, जिसके प्रभाव मे आकर बच्चे माता-

पिता की अवहेलना करते रहे है। ऐसा फिर हो, इस बात का प्रयत्न उपर्युक्त धारा जोडकर किया गया है।

यह एक उदाहरण-मात्र है। इस प्रकार की बहुत-सी कठिनाइया आयोग के सामने थी। तभी तो इस घोषणा-पत्र को तैयार करने मे दो वर्ष लगे। अब यह अधिक-से-अधिक सहमति-प्राप्त मानव-अधिकारो का एक सीधा-सादा घोषणा-पत्र है। हमने इसे 'सीधा-सादा' कहा है, लेकिन वास्तव मे यह मानव जाति के इतिहास मे नये समाज को स्थापना का दुन्दुभि-नाद है।

: ५ :

घोषणा की व्याख्या

इस घोषणा-पत्र मे जिन अधिकारो को स्वीकार किया गया है, मोटे तौरपर वे दो प्रकार के है—(१) व्यक्तिगत, नागरिक और राजनैतिक अधिकार (अनुच्छेद ३ से २१ तक), (२) आर्थिक, सामाजिक और सास्कृतिक अधिकार (अनुच्छेद २२ से २७ तक)। इसके अतिरिक्त पहले अनुच्छेद मे कुछ आधारभूत सिद्धातो को सामने रखा गया है। इनके अनुसार 'सभी मनुष्यो को गौरव और अधिकारो के मामलो मे जन्मजात स्वतत्रता, समानता, बुद्धि और अतरात्मा की देन प्राप्त है और परस्पर उन्हे भाई-चारे के भाव से बर्ताव करना चाहिए।' ऐसा जान पडता कि इस अनुच्छेद का आधार दो धारणाए है (१) आजादी और समानता का अधिकार मानव का जन्मसिद्ध अधिकार है (२) मनुष्य विचारवान् नैतिक प्राणी है और यही ससार के दूसरे जीवो से उसकी विशेषता को प्रकट करता है। भारत इन दोनो धारणाओ का सदा से पक्षपाती रहा है। स्वतत्रता-सग्राम के समय पहली धारणा के कारण ही लोकमान्य तिलक ने यह नारा लगाया था, "स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है, हम उसे लेकर रहेगे।" गाधीजी तो आजादी के प्रति इतने सजग थे कि उन्होने कहा "किसीकी महरबानी मागना अपनी आजादी खोना है।" इसी तरह दूसरी धारणा के सबध मे इस देश के नीतिज्ञो ने बहुत पहले ही कहा था "आहार, निद्रा, भय और मैथुन ये सब प्राणियो मे समान है, लेकिन मनुष्य मे ज्ञान की विशेषता है। यही ज्ञान उसको दूसरे प्राणियो से अलग करता है।" गीता ने ज्ञान के सबध मे कहा है—"जहा पूर्ण ज्ञान और उसका अनुसरण करनेवाली क्रिया है, वहा नीति, विजय,

लक्ष्मी और अखण्ड वैभव है ।" तमाम कार्यो की परिसमाप्ति ज्ञान मे होती है ।

इस दृष्टि से यह अधिकार इस घोषणा-पत्र का हृदय है । इस अधिकार के पीछे जो भावना है, उसी भावना ने युग-युग मे समस्त विश्व के मनीषियो के भीतर ज्ञान की ज्योति जगाई थी । इसी भावना के कारण अधकार-कालीन ससार मे भी ज्ञान की यह ज्योति मानव का मार्ग प्रदर्शन करती रही ।

घोषणा का दूसरा अनुच्छेद मानव-मात्र को जाति, रग, लिग, भाषा, धर्म, राजनैतिक या अन्य विचारधारा, राष्ट्रीय या सामाजिक स्थिति, सपत्ति, जन्म और दूसरे आधार पर बिना किसी भेदभाव के घोषणापत्र मे निहित अधिकारो और स्वतत्रताओ का अधिकार देना है । यह घोषणा-पत्र मे निहित उस व्यवस्था का स्पष्टीकरण है जिसके अनुसार राष्ट्र-सघ को जाति, लिग, भाषा अथवा धर्म के आधार पर बिना भेदभाव के सबके लिए मानव-अधिकार व बुनियादी स्वतत्रताओ को बढावा देना चाहिए । इस अनुच्छेद मे यह भी कहा गया है कि किसी भी देश या प्रदेश के, वह चाहे आश्रित, सरक्षित अथवा खुद-मुख्तार हो, किसी भी व्यक्ति के साथ उन बातो के आधार पर कोई भी भेदभाव नही किया जाना चाहिए । सक्षेप मे, इसको इस प्रकार कह सकते है कि सभी देशो और प्रदेशो के लोग बिना किसी भेदभाव के समान है तथा घोषणापत्र मे बताये गए सभी अधिकारो के हकदार है ।

व्यक्तिगत नागरिक और राजनैतिक अधिकार

अनुच्छेद ३ के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को 'जीवन, स्वतत्रता और सुरक्षा का अधिकार है ।' यह बुनियादी अधिकार है और इससे कोई भी इन्कार नही कर सकता । जब हम इसे स्वीकार कर लेते है तो किसीको गुलामी या दासता मे रखने का प्रश्न ही नही उठता । किसीके साथ निर्दय, अमानुषिक या अपमान-जनक व्यवहार कैसे किया जा सकता है ? यह स्पष्ट है कि

दासता या आश्रय का कोई रूप मानव के मौलिक अधिकारो को नष्ट किये बिना नही रह सकता। गुलामी मे रहना इन्सान

दासता मे पिसनेवाले नीग्रो

की शान के खिलाफ है। गुलामी से मुक्ति पाने के लिए ससार के असख्य व्यक्तियो ने प्राणो का मोह नही किया। गाधीजी ने कहा, "जो भी व्यक्ति हृदय से प्रार्थना करता है, वह कभी भी गुलामी को स्वीकार नही कर सकता।" उन्हीके नेतृत्व मे भारत ने अतिम रूप से गुलामी पर चोट की। इसलिए भारत इस अनुच्छेद का महत्त्व बहुत अच्छी तरह समझता है। इस

अनुच्छेद पर विचार करते समय राष्ट्रपति लिकन का ध्यान हो आना भी स्वाभाविक है। अमरीका मे दासता का अत करते हुए उन्होने अपने प्राणो की आहुति दे दी थी। उनका यह वाक्य "चूकि मै दास बनना नही चाहूगा, इसलिए स्वामी बनना भी नही चाहूगा।" स्वाधीनता के दीवानो के लिए एक मत्र बन गया है।

अनुच्छेद ३ मे इसी मत्र की व्याख्या है और अनुच्छेद ४ और ५ का सबध भी इन्ही अधिकारो से है।

मनुष्य की सुरक्षा की व्यवस्था आजकल राज्यो के द्वारा बनाये गए कानूनो से होती है। इसलिए यह आवश्यक है कि सभी मनुष्य कानून के सामने बराबर समझे जाय और समान रूप से कानूनी सुरक्षा का उपभोग कर सके। यदि किसीके बुनियादी अधिकारो का उल्लघन या अतिक्रमण होता हो तो उसे उसके विरुद्ध कानून की सहायता लेने का अधिकार भी होना चाहिए। अनुच्छेद ६, ७ और ८ मे इन्ही अधिकारो की सुरक्षा की व्यवस्था की गई है।

सूर्य बिना किसी भेदभाव के ससार की सभी अच्छी और बुरी वस्तुओ पर अपना प्रकाश डालता है, बादल और वायु भी किसी प्रकार का भेदभाव नही करते। तब मनुष्य ही ऐसा क्यो करे ? इस घोषणापत्र मे इसीलिए निर्दोष और अपराधी दोनो की समान रूप से रक्षा करने का प्रयत्न किया गया है। अनुच्छेद ९ के अनुसार किसीकी भी निरकुश गिरफ्तारी नही की जायगी, उसे निरकुश रूप से बदी अथवा निर्वासित नही किया जायगा। अनुच्छेद १० के अनुसार हरेक को उचित सार्वजनिक मुकदमे का अधिकार है। अनुच्छेद ११ के अनुसार किसी भी व्यक्ति को तबतक निरपराध माना जायगा जबतक उसे ऐसी खुली अदालत मे, जहा उसे अपनी सफाई की सभी आवश्यक सुविधाए सुलभ हो, कानून के अनुसार अपराधी न सिद्ध कर दिया जाय। वस्तुत, यदि अपराधी के अधिकारो की

रक्षा न की जाय तो निर्दोषो के अधिकार भी खटाई मे पड सकते है। फौजदारी कानून का यह आधारभूत सिद्धात है—"अपराधी और निर्दोष दोनो के अधिकारो की सुरक्षा आवश्यक है।" इस दृष्टि से कह सकते है कि मानव-अधिकारो का यह घोषणापत्र एक सार्वलौकिक 'मैग्ना कार्टा' है।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। परतु उसके जीवन के दो पहलू है। एक पहलू का सबध समाज से है, दूसरे का स्वय अपने से है। कोई भी व्यक्ति अपनी गोपनीयता, एकातता और घर के दूसरे निजी मामलो मे बाहरी हस्तक्षेप पसन्द नही कर सकता। इस अधिकार की रक्षा होनी ही चाहिए। अनुच्छेद १२ मे मनुष्य की उसी सुरक्षा का वचन दिया गया है। घर की पवित्रता, पत्र-व्यवहार की गोपनीयता, व्यक्ति के सम्मान और ख्याति को सुरक्षित किया गया है।

इतिहास ऐसी घटनाओ से भरा पडा है जब तानाशाहो और अत्याचारी शासको ने मनुष्यो को भयकर यातनाए दी और उन्हे अपनी जन्मभूमि-मातृभूमि से भागकर दूसरे देशो मे शरण लेनी पडी। आज भी ऐसे अनेक अभागे दर-दर की ठोकरे खाते फिर रहे है। राष्ट्र-सघ उनकी समस्या पूरी तरह से नही सुलझा सका है। कई देश ऐसे शरणार्थियो को शरण तक नही देते। इसी स्थिति को ध्यान मे रखते हुए इस घोषणा-पत्र मे एक नई व्यवस्था की गई है। जहा अनुच्छेद १३ लोगो को अपने देश की सीमा के अदर स्वतत्रतापूर्वक आने-जाने और बसने के अधिकार के साथ-साथ अपने या पराये देश को छोडने और स्वदेश वापस आने का अधिकार देता है वहा अनुच्छेद १४, और भी आगे बढकर, प्रत्येक व्यक्ति को सताये जाने पर दूसरे देशो मे शरण लेने और रहने का अधिकार भी देता है। लेकिन इस अनुच्छेद मे यह नही कहा गया है कि हरेक का यह अधिकार है कि उसे शरण दी जाय, क्योकि शरण देना राज्य का अपना ही अधिकार है। इस अनुच्छेद मे

यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि इस अधिकार का लाभ ऐसे मामलो मे नही मिलेगा जो वास्तव मे गैर-राजनैतिक अपराधो से सबधित है या जो सयुक्त राष्ट्र-सघ के उद्देश्य और सिद्धातो के विरुद्ध है ।

इस समय राज्य-विहीनता एक गम्भीर समस्या बन गई है । अतर्राष्ट्रीय कानूनी व्यवस्था मे यह एक विरोधाभास है । एक राज्य-विहीन व्यक्ति को किसी भी राज्य की सुरक्षा प्राप्त नही है । और उस देश मे, जहा भी वह रहता है, उसे अनेक अधिकारो से वचित रखा जाता है । अनुच्छेद १५ हरेक व्यक्ति को केवल राष्ट्रीयता का ही अधिकार नहीं देता, बल्कि निरकुश रूप से राष्ट्रीयता के छीने जाने पर उसे सुरक्षा और राष्ट्रीयता बदलने की छूट भी देता है ।

परिवार कितना प्यारा शब्द है । वह समाज की प्राकृतिक और बुनियादी इकाई है । और उसका आधार है 'विवाह' । अनुच्छेद १६ मे इसी सत्य को स्वीकार किया गया है । पुरुषो और स्त्रियो को पूर्ण और स्वतत्र सहमति के आधार पर बिना किसी जाति, राष्ट्रीयता अथवा धर्म के भेदभाव के विवाह करने का अधिकार है । परिवार बसाने का भी अधिकार है । विवाह करने, वैवाहिक जीवन बिताने और विवाह-विच्छेद करने मे स्त्री-पुरुष दोनो को समान अधिकार है । युग-युग से विश्व के सभी दशो मे इस प्रश्न को लेकर विरोधी व्यवस्थाए दी गई है । स्त्रियो को विशेष रूप से इस व्यवस्था से दारुण कष्ट उठाने पडे है । यह अनुच्छेद उसी व्यवस्था का अत करता है ।

सपत्ति की मालिकयत का अधिकार आज के युग का सबसे अधिक विवादग्रस्त मसला है । अनुच्छेद १७ मे इसी जटिल समस्या का हल निकालने का प्रयत्न है । इसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अकेले और दूसरो के साथ मिलकर सपत्ति रखने का अधिकार है । किसीको भी मनमाने ढग से अपनी सपत्ति से वचित नही किया जायगा ।

अनुच्छेद १८ और १९ का कई कारणो से विशेष महत्त्व है। इनका सबध मनुष्य की विचार और धर्म-सबधी स्वतत्रता से है। कह सकते है कि यह एक पवित्र अनुच्छेद है। कोई भी तानाशाह किसी भी व्यक्ति के आध्यात्मिक साम्राज्य पर धावा नही कर सकता। कोई भी व्यक्ति अपना धर्म या विश्वास बदल सकता है। अकेले अथवा सार्वजनिक रूप से उसे शिक्षा, क्रिया, उपासना तथा व्यवहार द्वारा प्रकट कर सकता है। धर्म-परिवर्तन को लेकर ससार मे जितने अत्याचार हुए, निर्दोष मानवो का जितना रक्त वहाया गया है, इस अनुच्छेद द्वारा सयुक्त राष्ट्र-सघ मानो उसीका प्रायश्चित्त कर रहा है। अनुच्छेद १९ मे प्रत्येक व्यक्ति को विचार और उसकी अभिव्यक्ति की स्वतत्रता का अधिकार दिया गया है। इस अधिकार की परिधि और व्याख्या करते हुए लिखा है—'बिना हस्तक्षेप के कोई राय रखना और किसी भी माध्यम के जरिए से तथा सीमाओ की परवाह न करके किसीकी सूचना और धारणा का अन्वेषण, ग्रहण और प्रदान करने की स्वतत्रता है।' सूचना की स्वतत्रता इतनी महत्त्वपूर्ण है कि महासभा ने उसे —'उन समस्त स्वतत्रताओ की, जिनका सयुक्त राष्ट्र-सघ से वास्ता पडता है, कसौटी' के रूप मे घोषित किया है। (प्रस्ताव ५९ I)।

ऊपर कई बार कहा जा चुका है कि मनुष्य सामाजिक प्राणी है। वह अकेला नही रह सकता। यदि उसे अकेला रहना पडे या ऐसा करने के लिए उसे बाध्य किया जाय तो ससार मे समाज जैसी कोई चीज नही रह जायगी। इसलिए अनुच्छेद २० मे कहा गया है —"प्रत्येक व्यक्ति को सभा करने या समिति बनाने की स्वतन्त्रता का अधिकार है" लेकिन साथ ही यह भी कहा गया है कि किसीको भी सस्था का सदस्य बनने के लिए मजबूर नही किया जा सकता। इस अनुच्छेद मे सस्था की व्याख्या भी कर दी गई है। उसका अर्थ है—"कोई भी सस्था, शाखा, राजनैतिक दल अथवा कोई भी पेशा-सगठन।" अनुच्छेद

प्रत्येक व्यक्ति को केवल काम पाने का ही नही, उचित और सुविधाजनक परिस्थितियो मे अपनी इच्छानुसार धधा करने का अधिकार भी आवश्यक है। काम करने के अधिकार का एक गुलाम या एक ऐसे आदमी के लिए भला क्या अर्थ हो सकता है, जिसे काम करने पर मजबूर किया जाय। यह अधिकार उपहास-मात्र है। इसी बात को अनुभव करके २३वे अनुच्छेद मे प्रत्येक व्यक्ति को काम करने, अपनी इच्छानुसार काम-धधा चुनने, समान कार्य के लिए बिना किसी भेद-भाव के समान रूप से उचित और गौरव के योग्य काफी मजदूरी पाने, अपने हितो की रक्षा के लिए श्रमजीवी-सघ बनाने और उसमे भाग लेने का पूरा अधिकार दिया गया है। यही नही, अनुच्छेद २४ मे कहा गया है कि प्रत्येक व्यक्ति को विश्राम और अवकाश का अधिकार है। उसके काम के घटो की उचित सीमा निश्चित होनी चाहिए और उसे समय-समय पर मजदूरी-सहित छुट्टिया भी मिलती रहनी चाहिए। अनुच्छेद २५ मे प्रत्येक व्यक्ति और उसके परिवार के स्वास्थ्य और कल्याण के, रहन-सहन के उच्च स्तर और बेरोजगारी, बीमारी, अपगुता, वैधव्य और वृद्धावस्था की दशा मे सुरक्षा के अधिकार को मान्यता दी गई है।

इस प्रकार अनुच्छेद २३ से लेकर २५ तक का सबध आर्थिक व सामाजिक अधिकारो से है। शिक्षा तथा सास्कृतिक अधिकारो का निर्देश अनुच्छेद २६ और २७ मे किया गया है। प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा पाने का अधिकार है, इसको तो आज लगभग सभी राष्ट्रो ने स्वीकार कर लिया है। सभी राज्य अपने समस्त नागरिको को शिक्षा देना अपना कर्तव्य समझने लगे है। २६वे अनुच्छेद मे इस बात की व्यवस्था के अतिरिक्त यह भी कहा गया है कि "माता-पिता को सबसे पहले इस बात का अधिकार है कि वे चुनाव कर सके कि किस तरह की शिक्षा उनके बच्चो को दी जायगी।" यह व्यवस्था क्यो की गई, इसकी

चर्चा पिछले परिच्छेद मे कर चुके है। इस अनुच्छेद मे शिक्षा के विभिन्न स्तरो को और पद्धतियो को लिया गया है। प्रारम्भिक शिक्षा मुफ्त और अनिवार्य होनी चाहिए। प्राविधिक (तकनीकी) और पेशेवर शिक्षा धीरे-धीरे उपलब्ध की जानी चाहिए। उच्च शिक्षा भी सभी लोगो को योग्यता के आधार पर समान रूप से मिलनी चाहिए। शिक्षा के उद्देश्य के सबध मे जो वक्तव्य दिया गया है, वह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। "शिक्षा का उद्देश्य होगा मानव के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास और मानव-अधिकारो और बुनियादी स्वतत्रताओ के प्रति सम्मान की पुष्टि। शिक्षा द्वारा राष्ट्रो, जातियो अथवा धार्मिक समूहो के बीच आपसी सद्भावना, सहिष्णुता और मैत्री का विकास होगा और शाति बनाये रखने के लिए सयुक्त राष्ट्रो के प्रयत्नो को आगे बढाया जायगा।"

अनुच्छेद २७ के अनुसार "प्रत्येक व्यक्ति को स्वतत्रतापूर्वक समाज के सांस्कृतिक जीवन मे हिस्सा लेने, कलाओ का आनद उठाने तथा वैज्ञानिक उन्नति और उसकी सुविधाओ मे भाग लेने का अधिकार है।" इस प्रकार सस्कृति, कला और विज्ञान अब चद विशिष्ट लोगो की बपौती नही रह गई है। उनपर सभीका अधिकार स्वीकार कर लिया गया है। जनतत्र का यही अर्थ है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक लेखक, कलाकार तथा अनुसधानकर्त्ता के भौतिक और बौद्धिक हितो की सुरक्षा को भी मान्यता मिलनी चाहिए। समाज के वास्तविक निर्माता वे ही है। इसलिए इस अनुच्छेद मे यह भी कहा गया है, "प्रत्येक व्यक्ति को किसी भी ऐसी वैज्ञानिक, साहित्यिक या कलात्मक कृति से उत्पन्न नैतिक और आर्थिक हितो की रक्षा का अधिकार है जिसका रचयिता वह स्वय हो।" यह उचित ही है।

अन्तिम तीन अनुच्छेद

अब केवल तीन अनुच्छेदो की चर्चा शेष रह जाती है।

इस बात को सभी स्वीकार करेगे कि इस घोषणा मे निहित अधिकारो और स्वतन्त्रताओ का उपभोग ऐसे किसी भी देश मे नही किया जा सकता, जहा भय और अत्याचार का बोल-बाला हो अथवा युद्ध की आग भडक रही हो। उनका उपभोग केवल उसी सामाजिक अथवा अतर्राष्ट्रीय व्यवस्था के अतर्गत हो सकता है जो कानून या आपसी सम्मान पर आधारित हो। २८वे अनुच्छेद मे इसी प्रकार की सामाजिक और अतर्राष्ट्रीय व्यवस्था का अधिकार मान्य किया गया है।

जहा अधिकार का प्रश्न उठता है वहा कर्तव्य अपने-आप ही आ जाता है। एक ही वस्तु के ये दो पहलू है। इसलिए अधिकारो और स्वतन्त्रताओ की इस घोषणा मे कर्तव्य की ओर भी ध्यान आकर्षित किया गया है। यह स्वाभाविक है और उचित भी। अनुच्छेद २९ मे प्रत्येक व्यक्ति को उसके कर्तव्यो का स्मरण कराते हुए, उसके अधिकारो और दायित्वो की सीमा निर्धारित की गई है। यह चेतावनी भी दी गई है कि उसका उस समाज के प्रति कर्तव्य है जिसमे उसके व्यक्तित्व का स्वतन्त्र और पूर्ण विकास सभव है। अपने अधिकारो और दायित्वो का उपभोग करते हुए प्रत्येक व्यक्ति केवल ऐसी ही सीमाओ से बद्ध होगा जो कानून द्वारा निश्चित की गई है और जिनका एकमात्र उद्देश्य दूसरे के अधिकारो और स्वतन्त्रताओ के लिए आदर और समुचित स्वीकृति की प्राप्ति होगा। इसके अतिरिक्त उनसे भी, जिनकी आवश्यकता एक प्रजातन्त्रात्मक समाज मे नैतिकता, सार्वजनिक व्यवस्था और सामान्य कल्याण की उचित आवश्यकताओ को पूरी करना होगा। इस अनुच्छेद मे यह व्यवस्था भी की गई है कि कोई भी व्यक्ति "इन अधिकारो और स्वतन्त्रताओ का उपभोग किसी भी प्रकार से सयुक्त राष्ट्रों के सिद्धातो व उद्देश्यो के विरुद्ध नही करेगा।"

अत मे अनुच्छेद ३० मे चेतावनी दी गई है कि "इस घोषणा मे बताई गई किसी भी बात का यह अर्थ नही लगाना चाहिए

जिससे यह मालूम हो कि किसी भी राज्य-समूह या व्यक्ति को किसी ऐसे प्रयत्न मे सलग्न होने या ऐसा काम करने का अधिकार है, जिसका उद्देश्य यहा बताये गए अधिकारो और स्वतत्रताओ मे से किसी का भी विनाश करना हो।''

उपसहार

इस घोषणा-पत्र के सम्बन्ध मे अक्सर यह पूछा गया है कि यह सार्वभौम घोषणा-पत्र नैतिक मानको का विवरण है या कानूनी वक्तव्य। इस सवाल का उत्तर एकदम 'हा' अथवा 'ना' मे देना बहुत कठिन है। साधारणतया इस बात पर सब सहमत है कि यह घोषणा-पत्र सामान्य सिद्धान्तो का लेखा है और सबसे अधिक नैतिक अधिकार-सत्ता से परिपूर्ण है। जैसाकि पहले कहा जा चुका है यह घोषणा निर्विरोध स्वीकार की गई थी किन्तु इसका मसविदा किसी सन्धि के रूप मे तैयार नही किया गया था। इसलिए इसपर किसी राष्ट के हस्ताक्षर अथवा मान्यता की आवश्यकता नही है, और इसीलिए यह घोषणा किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय अथवा स्थानीय कानून के अश के रूप मे नही मानी जा सकती। फिर भी चूकि यह घोषणा राष्ट्रो के समुदाय मे सर्वोपरि अधिकार-सत्ता द्वारा स्वीकृत की गई है, इसलिए इसके पीछे वह नैतिक बल है, जिसकी उपेक्षा नही की जा सकती। प्रत्येक अधिकार और स्वतत्रता के बारे मे इस घोषणा मे जो मानक रखे गये है, उन्हे यदि जन-साधारण और राज्य दोनो, नैतिक स्तर के रूप मे स्वीकार करे तो शायद घोषणा मे ऐसी अधिकार-सत्ता के दर्शन हो सकेंगे जो किसी भी सन्धि और कानून से कही ऊची है।

कुछ लोगो का मत है कि घोषणा मे कानूनी शक्ति का पूर्ण अभाव है। ऐसा नही कहा जा सकता। इसके विपरीत सयुक्त राष्ट्र-सघ का चार्टर वह सन्धि है जो कानूनी रूप से मान्य है। चार्टर के अन्तर्गत सभी सदस्य-राष्ट्र, ''जाति, लिग, भाषा अथवा

धर्म के आधार पर भेद-भाव के बिना सबके लिए मानव-अधिकारों और बुनियादी स्वतन्त्रताओ के लिए मान्यता देने और सार्वभौम सम्मान को प्रोत्साहित करने के लिए अलग-अलग अथवा मिल कर कार्यवाही करने के लिए' वचनबद्ध है। (अनुच्छेद ५५ और ५६) पर चार्टर मे मानव-अधिकारो की व्याख्या नही की गई है। सार्वभौम-घोषणा ही उसका अधिकृत अर्थ प्रकट करती है। इसलिए चार्टर के मानव-अधिकार-अनुबन्ध मे सदस्य राष्ट्र जिस सीमा तक वचनबद्ध है, उसी सीमा तक इस घोषणा को मानने के लिए भी बाध्य है।

एक और भी तर्क है। इस घोषणा के अनेक अनुच्छेद राष्ट्रीय सविधानो और अधिकार- सम्बन्धी विधेयको पर आधारित है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि सुसस्कृत राष्ट्रो द्वारा मान्य कानून के सामान्य सिद्धान्तो मे से अनेक सिद्धान्तो का समावेश इस घोषणा-पत्र मे हुआ है।

तर्क का कोई अन्त नही है, लेकिन एक बात निर्विवाद रूप से स्वीकार की जा सकती है। वह यह है कि अब तक मानव-अधिकारो के सम्बन्ध मे जितनी घोषणाए हुई है उनमे यह घोषणा निश्चित रूप से सबसे अधिक व्यापक है। इतिहास मे मानव-अधिकारो और बुनियादी स्वतन्त्रताओ को इतने व्यापक रूप मे सामने रखनेवाली यह प्रथम घोषणा है। इसीलिए इसे एक अन्तर्राष्ट्रीय मेग्ना कार्टा अथवा मानव-अधिकारो का एक अन्तर्राष्ट्रीय चार्टर कहा गया है। निस्सन्देह मानव के आदि अस्तित्व के टेढे-मेढे रास्ते से स्वतत्र वातावरण तक पहुचने मे यह एक ऐतिहासिक मार्ग-चिह्न है—ऐसा मार्ग-चिह्न जिसपर आज का युग उचित गर्व कर सकता है।

: ६ :

प्रगति और प्रभाव

विश्व मे शान्ति स्थापित करने के लिए सैकडो वर्षो से प्रयत्न होते चले आ रहे है, लेकिन उनका कोई विशेष परिणाम नही निकला। कारण कि सिद्वात रूप मे तो हमने शाति की आवश्यकता को स्वीकार किया, लेकिन उस सिद्धात को अपने जीवन मे लागू न कर सके।

मानव-अधिकारो के इस घोषणा-पत्र के साथ ऐसा नही हुआ। उसको स्वीकार करनेवाले व्यक्तियो ने इस बात को अच्छी तरह अनुभव कर लिया था कि यह घोषणा-पत्र सग्रहालय मे सजाकर रखने की चीज नही है। इसीलिए इसे स्वीकार करने के बाद उन्होने न केवल इसका प्रचार किया, अपितु इसपर अमल भी किया है।

सम्मति-पत्रो का मसविदा—

घोषणा-पत्र के बाद आयोग ने सम्मति-पत्रो के मसविदे की ओर ध्यान दिया। सम्मति-पत्र एक ही होना चाहिए या दो, अर्थात् १ नागरिक तथा राजनैतिक अधिकारो और २. आर्थिक, सामाजिक तथा सास्कृतिक अधिकारो को एक ही पत्र मे रखा जाय या अलग-अलग, इसपर काफी मतभेद था, किंतु, १९५१ मे महासभा ने निश्चय किया कि दो सम्मति-पत्र होने चाहिए। यह कार्य १९५४ मे पूरा हुआ और आर्थिक तथा सामाजिक परिषद् ने दोनो सम्मति-पत्रो का मसविदा महासभा को भेज दिया। ये सम्मति-पत्र भाग लेनेवाले सभी राज्यो को कानूनी तौर पर मान्य होगे।

इसके बाद आयोग ने अपने भविष्य की ओर ध्यान दिया।

१९५५ मे उसने जो कार्यक्रम स्वीकार किया, उसका सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है— (१) सम्मति-पत्रो का लागू करना तथा राष्ट्रसघ के तत्त्वावधान मे की गई दूसरी अभिसधियो द्वारा मानव-अधिकारो को बढावा देना, (२) भेदभाव रोकना और अल्प-सख्यको की सुरक्षा, (३) लोगो तथा राष्ट्रो के आत्म-निर्णय के अतर्राष्ट्रीय स्तर पर सम्मान मे अभिवृद्धि, (४) अतर्राष्ट्रीय विकास तथा विश्वव्यापी स्तर पर मानव-अधिकारो के क्षेत्र मे हुई प्रगति पर विचार, (५) विश्वव्यापी स्तर पर कुछ विशेष अधिकारो का आवश्यक सिफारिशो के साथ अध्ययन करना, (६) मानव-अधिकारो की अतर्राष्ट्रीय घोषणा का अधिकाधिक प्रचार करना तथा इसके प्रभावो को आकना, (७) मानव-अधिकारो की वार्षिक पुस्तक के स्वरूप व मजमून पर विचार, (८) मानव-अधिकारो-सम्बन्धी पत्र-व्यवहार का ध्यान रखना तथा उनके सबध मे आके हुए किसी सुभाव पर विचार करना , तथा (९) पिछले राज्यो के सम्मेलन मे अपूर्ण रह गया विषय व सामने आनेवाला और कोई नवीन विषय, जो पूरा न हो सका हो।

इस प्रकार आयोग जो अबतक मानव-अधिकारो की परिभाषा करने मे लगा हुआ था अब उन्हे मूर्त रूप देने की ओर प्रयत्नशील हुआ। इस कार्यक्रम के तीन मुख्य रूप है (१) मानव-अधिकारो पर सरकारो द्वारा समय-समय पर रिपोर्ट, (२) कुछ विशेष अधिकारो का अध्ययन और (३) मानव अधिकारो की सुरक्षा के लिए विभिन्न देशो के ज्ञान के व्यावहारिक अनुभवो का आदान-प्रदान।

१९५६ मे मानव-अधिकार-आयोग की सिफारिशो के अनुसार आर्थिक तथा सामाजिक परिषद् ने सदस्य-राष्ट्रो से हर तीन वर्षो के बाद रिपोर्ट देने को कहा। इनमे मानव-स्वतन्त्रता के सम्बन्ध मे हुई प्रगति तथा इस बारे मे अपनाये गए तरीको का व्यौरा होता है। आयोग इनपर विचार करता है और

परिषद् को इनके बारे मे टिप्पणिया, निष्कर्ष और सिफारिशे भेजता है।

आयोग सयुक्त राष्ट्र-सघ के सदस्य-राज्यो मे कुछ विशेष अधिकारो का अध्ययन करता है। यह सामग्री वह इन साधनो से प्राप्त करता है (१) सरकारे, (२) प्रधान सचिव, (३) विशेष सस्थाए, (४) गैर-सरकारी सस्थाए, जो आर्थिक तथा सामाजिक परिषद् को परामर्श देती है, और (५) मान्यता-प्राप्त विद्वानो और वैज्ञानिको की रचनाए। इसके लिए आयोग ने चार सदस्यो की एक समिति बना दी है। इस समिति ने अध्ययन के लिए जो विषय चुना है वह है—'बिना जाच-पडताल के व्यक्ति की गिरफ्तारी,नजरबन्दी तथा देश-निकाले से सुरक्षा का अधिकार।'

मानव-अधिकारो की वार्षिक पुस्तक हर वर्ष प्रकाशित होती है। इसमे न्यायालयो के निर्णय, अन्तर्राष्ट्रीय सन्धियो और समझौतो मे वर्णित मानव-अधिकारो का निरूपण किया जाता है। सदस्य-राज्य, सरक्षित प्रदेश और ऐसे प्रदेश जहा स्वशासन नही है, अपने विवरण भेजते है। मानव-अधिकारो-सम्बन्धी सयुक्त राष्ट्र-सघ के अगो के महत्त्वपूर्ण फैसलो को भी इसमे शामिल किया जाता है।

परामर्शदात्री सेवाएं—

सन् १९५५ मे महासभा ने मानव-अधिकार-आयोग की सिफारशो पर आधारित 'मानव-अधिकारो के क्षेत्र मे परामर्शदात्री सेवाए' पर एक प्रस्ताव स्वीकार किया। इसमे तीन प्रकार की सहायता का कार्यक्रम है १ परार्शमदात्री सेवाए, २ फैलोशिप तथा छात्रवृत्तिया, और ३ गोष्ठिया। सरकारो की प्रार्थना पर किसी भी मानव-अधिकार के विषय पर ये सेवाए उपलब्ध की जा सकती है। पर यह विषय ऐसा नही होना चाहिए, जिसके बारे मे आजकल के प्राविधिक सहायता-कार्यक्रमो के अन्तर्गत अथवा किसी विशेष सस्था द्वारा पहले ही सहायता

दी जाती हो। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत जिनेवा, बैंकाक और सैंटीयागो (चिली) और फिलीपीन मे समय-समय पर कई गोष्ठिया हो चुकी है। इन गोष्ठियो मे मानव-अधिकार-सम्बन्धी ज्ञान के आदान-प्रदान, नागरिक जन-जीवन मे एशियाई महिलाओ का भाग तथा फौजदारी कानून मे मानव-अधिकारो की सुरक्षा आदि विषयो पर विचार किया गया। इसके अतिरिक्त सयुक्त राष्ट्र-सघ के मुख्य कार्यालय मे सगठन के कार्य का अध्ययन करने के लिए फैलोशिप भी दिये गए है।

भेद-भावों को रोकना तथा अल्प-संख्यकों की सुरक्षा—

इस विषय का अध्ययन करने के लिए एक उप-आयोग बनाया गया है। इस उप-आयोग ने जिन विषयो को अध्ययन के लिए चुना वे है १ शिक्षा मे भेद-भाव, २ रोजगार तथा पेशो मे भेद-भाव, ३ धार्मिक अधिकारो तथा पद्धतियो से सम्बन्धित भेदभाव।

शिक्षा मे भेद-भाव पर अध्ययन पूरा होगया है और उप-आयोग ने अपनी तजवीजे मानव-अधिकार-आयोग को भेज दी है। इन तजवीजो के सम्बन्ध मे सरकारो से परामर्श किया जा रहा है।

सूचना की स्वतन्त्रता—

सन् १९४७ मे सूचना तथा समाचार-पत्रो की स्वतन्त्रता पर बारह विशेषज्ञो का एक उप-आयाग बनाया गया था। सन १९५२ मे इसने अपनी सिफारिशे आर्थिक तथा समाजिक परिषद् को भेज दी। महासभा ने इस आयोग के निर्णयो पर आधारित कई सिफारशे सरकारो को भेजी है। इस उप-आयोग ने दूसरे विषयो के साथ-साथ सवाददाताओ के लिए आचरण की नियमावली भी तैयार की। सन् १९५४ मे परिषद् ने विदेशी सवाददाताओ की स्थिति, कापीराइट, समाचारपत्रो के दर और अन्तर्राष्ट्रीय

ब्राडकास्टिंग जैसे प्रश्नो पर भी प्रस्ताव स्वीकार किये। सूचना की स्वतन्त्रता पर समय-समय पर विचार होता रहता है और महासभा अपनी सिफारिशे सरकारो को भेजती रहती है।

मानव-अधिकारों-संबंधी अध्ययन तथा अभिसन्धियां

आर्थिक तथा समाजिक परिषद् समय-समय पर किसी जाति को जान-बूझकर समूल नष्ट करने, शरणार्थियो, राज्यविहीन व्यक्तियो, नारियो की स्थिति, बेगार और दासता जैसे प्रश्नो पर विचार करने के लिए विषय-समितिया बनाती रहती है।

सन १९४८ मे महासभा ने किसी जाति को समूल नष्ट करने की रोकथाम और सजा पर एक अभिसन्धि स्वीकार की। यह अभिसन्धि १२ जनवरी, १९५१ से लागू है। शरणार्थियो की स्थिति-सम्बन्धी अभिसन्धि १९५१ मे स्वीकृत की गई थी, यह भी अब लागू है। इसके अनुसार शरणार्थियो को कुछ कानूनी अधिकार मिले है। विदेशियो के साथ जैसा व्यवहार किया जाता है, कम-से-कम वैसा व्यवहार उनके साथ भी हो, ऐसी इसमे व्यवस्था है। पासपोर्ट देने तथा देश-निकाले से बचाने का भी प्रबन्ध है।

राज्य-विहीन व्यक्तियो के सम्बन्ध मे भी सितम्बर सन् १९५४ मे एक अभिसन्धि स्वीकार की गई। यह शरणार्थी अभिसन्धि के समान ही है। इसी प्रकार बेगार खत्म करने के लिए सन् १९५७ मे एक और अभिसन्धि स्वीकार की गई। सन् १९५७ मे ही दासता के सम्बन्ध मे एक अभिसन्धि स्वीकृत हुई। अभी भी क्रूरतापूर्ण दासता के अतिरिक्त इससे मिलती-जुलती कुछ प्रथाए ससार के विभिन्न भागो मे पाई जाती है। इस अभिसन्धि मे ऐसी प्रथाओ को गैर-कानूनी करार दिया है, जैसे ऋण-बन्धन, दुलहन की कीमत, बालको से बेगार लेना, आदि-आदि

नारियो की नागरिकता के सम्बन्ध मे भी एक अभिसन्धि सन् १९५८ मे स्वीकृत हुई। यह अभिसन्धि नारियो के लिए

मतदान का अधिकार, सार्वजनिक पदो को ग्रहण करने तथा पुरुषो के साथ बराबरी से भाग लेने के अधिकार को सुनिश्चित करती है।

जिस समय चार्टर पर हस्ताक्षर किये गए थे उस समय ससार के ८० सर्वप्रभुतासपन्न राज्यो मे से लगभग ४० मे स्त्रियो को राजनैतिक अधिकार हासिल नही थे। हस्ताक्षर के बाद से ३५ देशो ने उनको राजनैतिक अधिकार प्रदान किये है। इसी प्रकार शिक्षा, आर्थिक अधिकार व अवसर तथा निजी कानून के क्षेत्र मे स्त्रियो के बहुत से अधिकार स्वीकार किये गए है। कुछ देशो मे शादी हो जाने पर स्त्री का सपत्ति पर कोई अधिकार नही रहता। आयोग के निर्णय पर आर्थिक तथा सामाजिक परिषद् ने सदस्य-राज्यो को इस सबध मे कुछ सिफारिशे भेजी थी। अल्प-विकसित क्षेत्रो मे पाई जानेवाली कुछ कुरीतियो पर, जैसे बाल-विवाह, दुलहिन की कीमत तथा पति-परिवार का विधवाओ पर अधिकार, महासभा ने एक प्रस्ताव स्वीकार किया है और तमाम राज्यो को इन कुरीतियो को खत्म करने का सुझाव दिया है। शादीशुदा नारियो की नागरिकता के सबध मे भी महासभा ने जनवरी सन् १९५७ मे एक अभिसधि स्वीकार की। ११ अगस्त, १९५८ से यह लागू हो चुकी है। इसके अनुसार एक विदेशी से विवाह करने पर पत्नी की नागरिकता पर स्वभावतः असर नही पडेगा।

विभिन्न आयोग और सस्थाए

मानव-अधिकारो से सबधित विभिन्न समस्याओ को लेकर समय-समय पर आयोगो, समितियो व सगठनो की स्थापना होती रहती है। सन् ४६ मे नारी की समस्याओ के लिए, सन् ५० मे युद्ध-बदियो की समस्याओ के सबध मे तथा सन् ५२ मे दक्षिण अफ्रीका सघ मे जाति-भेद की स्थिति का अध्ययन करने के लिए ऐसे ही आयोग स्थापित किये गए। अतिम आयोग की

रिपोर्ट पर महासभा ने दक्षिण अफ्रीका मे जाति-भेद की स्थिति पर अनेक सिफारिशे की। अभी तक इस प्रश्न को लेकर सघर्ष हो रहा है।

अतर्राष्ट्रीय श्रमिक सगठन श्रमिको की सुरक्षा और अधिकारो के बारे मे विशेष दिलचस्पी लेता है। सार्वभौम घोषणा के २६ और २७वे अनुच्छेद मे उल्लिखित शिक्षा-सबधी और सास्कृतिक अधिकार सयुक्त-राष्ट्र-शिक्षा-विज्ञान-सस्कृति-सगठन (यूनेस्को) के कार्यक्रम के मुख्य विषय है। यह सगठन भेद-भावो को दूर करने और घोषणा मे निर्दिष्ट अधिकारो और विभिन्नताओ के बारे मे शिक्षा को बढावा देने मे क्रियाशील है। विश्व-स्वास्थ्य-सघ का उद्देश्य स्वास्थ्य के उत्तम स्तर के उपभोग के अधिकार को बढावा देना है। विश्व-डाक-सघ ने राष्ट्रो के बीच डाक-सचार की स्वतत्रता के सिद्धात की घोषणा की है और अतर्राष्ट्रीय दूर-सचार सघ अतर्राष्ट्रीय पत्र-व्यवहार की गोपनीयता को सुरक्षित रखने का प्रयत्न करता है।

मानव-अधिकार-दिवस

१० दिसबर, १९४८ को सयुक्त राष्ट्र-सघ ने मानव-अधिकारों की सार्वभौम घोषणा को स्वीकार किया था। ४ दिसबर, १९५० को महासभा ने प्रस्ताव पास किया कि प्रतिवर्ष १० दिसबर को मानव-अधिकार-दिवस मनाया जाय और प्रगति के लिए अधिक प्रयास किया जाय। तभी से १० दिसबर ससार के अनेक भागों मे मानव-अधिकार-दिवस के रूप मे मनाया जा रहा है।

प्रभाव

सन् १९४८ मे इस सार्वभौम घोषणा के स्वीकार होने से अबतक ससार पर इसका जिस प्रकार और जितना प्रभाव पडा है, उसका ठीक-ठीक अनुमान लगाना बहुत कठिन है। फिर भी, हम उसकी एक झलक देने का प्रयत्न करेंगे।

स्वय सयुक्त राष्ट्र के प्रस्तावो व सिफारिशो मे इस सार्वभौम घोषणा अथवा इसके अलग-अलग अनुच्छेदो को सफलता के माप के रूप मे अक्सर उद्धृत किया गया है। आर्थिक व सामाजिक परिषद् ने 'निजी-कानून मे नारी का स्थान'-सबधी कई प्रस्ताव स्वीकार किये है। इनमे अनुच्छेद १६ का हवाला दिया गया है और सरकारो से प्रार्थना की गई है कि वे पति व पत्नी के पारिवारिक मामलो मे समान अधिकारो व दायित्वो को सुनिश्चित करने के लिए समस्त सभावित कदम उठाये।

अन्तर्राष्ट्रीय अभिसधियां—

यद्यपि यह घोषणा एक अतर्राष्ट्रीय कानूनी साधन नही है, फिर भी सयुक्त राष्ट्र अथवा अतर्राष्ट्रीय श्रमिक-सगठन के तत्त्वावधान मे होनेवाले अनेक अतर्राष्ट्रीय अभिसधियो मे इसकी मिसाल दी गई है। पीछे हमने जिन अभिसधियो की चर्चा की है उन सभीमे इस घोषणा का हवाला दिया गया है। शरणार्थियो तथा राज्य विहीन लोगो से सबधित अभिसधियो की प्रस्तावना मे पहला वाक्याश इस प्रकार है "यह विचार करते हुए कि १० दिसबर १९४८ को सयुक्त राष्ट्रीय चार्टर की मानव-अधिकारो की सार्वभौम घोषणा ने इस सिद्धात को फिर से दोहराया है कि मानव किसी भेदभाव के बिना आधारभूत अधिकारो व स्वतत्रताओ का उपभोग करेगा।"

संधियां और घोषणाए—

विभिन्न प्रदेशो ने अपनी सधियो व घोषणाओ मे इस सार्वभौम घोषणा अथवा उसके अनुच्छेदो का हवाला दिया है। इनमे प्रमुख है (१) यूरोपीय कन्वेशन, रोम, १९५०, (२) अमेरिकी राज्यो का दशम अतर्राष्ट्रीय सम्मेलन, काराकस, १९५४, (३) एशियाई-अफ्रीकी-सम्मेलन, बाडुंग १९५५, (४) जापानी शान्ति-सन्धि, सानफ्रासिसको, १९५१, (५) ट्राइस्ट प्रदेश-सम्बन्धी सम-

झौता, १९५४, और (६) फ्रेको ट्यूनीशियन कन्वेशन,१९५५ ।

इन सभी सधियो और घोषणाओ मे सार्वभौम घोषणा के अनुसार मानव-अधिकारो के मूलभूत सिद्धान्तो के प्रति पूर्ण सहयोग की प्रतिज्ञा की गई है ।

राज्यों के संविधान और कानून

इस घोषणा के स्वीकार होने के बाद अनेक नये राष्ट्रीय सविधान लागू हुए है, जिनमे इस घोषणा के मसविदे से सहायता ली गई है । इधर जो कानून या आदेश जारी किये गए है, उनमे कभी-कभी इस घोषणा अथवा इसके किसी अनुच्छेद का उदाहरण दिया गया है । १९४९, मे लागू किये गए जर्मन-सघीय गणतत्र के आधारभूत कानून, १९५० मे घोषित हैती के सविधान और इडोनेशिया के अस्थायी सविधान, लीबिया के सविधान (१९५१) और इरीट्रिया के सविधान (१९५२) पर भी इस घोषणा का काफी प्रभाव पडा है ।

टोगोलैड नियम के पहले अनुच्छेद (२२, फरवरी १९५८ के आदेश) के अनुसार फासीसी प्रशासन के अतर्गत टोगोलेड का सरक्षित प्रदेश "अतर्राष्ट्रीय सधियो व कन्वेशनो, मानव-अधिकारो की सार्वभौम घोषणा मे निर्दिष्ट सिद्धातो व फासीसी गणतत्र के सविधान की प्रस्तावना मे उल्लिखित बातो के प्रति सम्मान के आधार पर एक गणतत्र होगा ।"

पैरागुए, ओटोरिया (कनाडा), अर्जेन्टाइना, बोलीविया और पनामा की सरकारो ने सार्वभौम घोषणा के बाद कई ऐसे कानून बनाये है जिनमे इस घोषणा का या अलग-अलग अनुच्छेदो का हवाला दिया गया है । पनामा सरकार के एक कानून की प्रस्तावना कहती है, "रग अथवा जाति की वजह से किसी भी प्रकार का भेद-भाव राष्ट्रीय सविधान के २१वे अनुच्छेद व सयुक्तराष्ट्र महासभा द्वारा १० दिसबर १९४८ को स्वीकृत मानव-अधिकारो की सार्वभौम घोषणा का उन्मुक्त उल्लघन है ।"

न्याय-संबंधी निर्णय व सम्मतियां

इस सार्वभौम घोषणा अथवा इसके अलग-अलग अनुच्छेदों का अनेक न्याय-सम्बन्धी निर्णयो व सम्मतियो मे उल्लेख किया गया है। किसी राष्ट्र का न्यायालय अपने घरेलू मामलो मे एक अंतर्राष्ट्रीय घोषणा का हवाला दे, ऐसा बहुत कम होता है। उदाहरण के लिए, यहा हम कुछ ऐसे रोचक निर्णयो का उल्लेख करेंगे।

कोरट्राय, बेल्जियम मे एक महिला को उसकी माता के इच्छा के विरुद्ध उसके पिता की प्रार्थना पर एक पागलखाने मे रखा गया था। उस महिला की दिमागी हालत पर विशेषज्ञ की राय प्राप्त करने के बाद अदालत ने १० जून, १९५४ को उसे फौरन रिहा करने का आदेश दिया। अदालत ने अपने फैसले मे सार्वभौम घोषणा के अनुच्छेद ३ का उल्लेख किया है जिसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को जीवन, स्वाधीनता और वैयक्तिक सुरक्षा का अधिकार है।

प्रेस की स्वतत्रता से सबधित एक मामले मे नीदरलैंड्स के सुप्रीम कोर्ट मे (१९५१) वादी पब्लिक प्रासीक्यूटर ने कहा कि सवैधानिक अधिकार, जिसमे प्रेस की स्वतत्रता भी शामिल है, अब अखडित अधिकार नही रह गये है, क्योकि आधुनिक प्रवृत्ति उन अधिकारो को सार्वजनिक हितो की सीमाओ मे रखने की है। इसपर न्यायालय ने निर्णय दिया कि सविधान अधिकार को कमजोर करने की तथाकथित प्रवृति सयुक्तराष्ट्र महासभा द्वारा १० दिसबर, १९४८ को स्वीकृत मानव-अधिकारो की सार्वभौम घोषणा द्वारा अस्वीकृत की गई है।

न्यूजीलैड मे एक मावरी जाति की महिला के मकान मे एक गोरा किरायेदार रहता था। महिला ने अपने रहने के लिए मकान खाली कराने की दृष्टि से किरायेदार को नोटिस दिया। न्यूजीलैड के कानून के अनुसार किरायेदार का यह सिद्ध कर

देना उसके हक मे काफी था कि मकान खाली न करने पर मकान-मालिक को जो तकलीफ होगी, उससे कही अधिक कष्ट और परेशानी उसे मकान खाली करने पर होगी। लेकिन मकान-मालिक व किरायेदार दोनो गोरे होते तो यह प्रश्न न उठता किन्तु अब गोरे किरायेदार ने यह आपत्ति पेश की कि यदि वह मकान खाली करता है तो उसे बडी कठिनाई होगी, जबकि महिला मकान-मालिक को, जहा वह रहती है, वही रहने मे इतनी असुविधा नही होगी क्योंकि वह मावरी (अश्वेत) जाति की है। अदालत ने फैसला दिया कि क्योकि यह दलील जातिगत भेद-भाव पर दी गई है, इसलिए अमान्य है और उसने गोरे किरायेदार को छः हफ्ते के भीतर मकान खाली करने का आदेश दिया।[1] इस फैसले मे घोषणा के सातवे अनुच्छेद की झलक मिलती है।

सोवियत रूस मे पहले वहा के नागरिको को विदेशियो के साथ विवाह करने की मनाही थी, किंतु २६ नवम्बर, १९५३ को सोवियत सघ के समाजवादी गणतत्र ने १५ फरवरी १९४७ के इस कानून को रद्द कर दिया और १९ अगस्त १९३८ के नागरिकता अधिनियम के पाचवे अनुच्छेद को फिर से लागू कर दिया। इसमे कहा गया है कि यदि सोवियत सघ का कोई नागरिक किसी विदेशी नागरिक से विवाह करता है तो उसकी नागरिकता मे कोई नही अतर आयेगा।[2]

ऐसे अनेक उदाहरण है और ये इस बात के साक्षी है कि समस्त लोगो व समस्त राष्ट्रो के लिए सफलता के सामान्य मार्ग के रूप मे, बारह वर्ष पहले घोषित इस घोषणा ने सयुक्त राष्ट्र सघ व अलग-अलग सरकारो की गतिविधियो पर काफी प्रभाव डाला है। इसमे कोई सदेह नही कि भविष्य मे भी लोग इसी

[1] १९५० की वार्षिक पुस्तक, पृष्ठ २०४, सुप्रीम कोर्ट, न्यूजीलैंड।

[2] १९५३ की वार्षिक पुस्तक, पृष्ठ २८०, सुप्रीम कोर्ट, न्यूजीलैंड।

तरह इस घोषणा-पत्र से प्रेरणा प्राप्त करते रहेगे। यह घोषणा एक महान् व प्रेरणादायक दस्तावेज है, किंतु मानव-अधिकारो के बारे मे अतिम शब्द किसी भी तरह नही है। जैसे-जैसे मानव प्रगति करता जायगा, वह अधिक स्वतत्रता, अधिक नवीन विचारो और अधिक समृद्धिशाली जीवन के नये-नये क्षितिजो की खोज करता रहेगा—ऐसे क्षितिज, जिनकी आज हम शायद कल्पना भी नही कर सकते।

भविष्य के आचल मे चाहे कुछ भी हो, मानव-अधिकारो की यह सार्वभौम घोषणा वर्तमान युग के नर-नारियो की सर्वोत्तम आकाक्षाओ का प्रतिनिधित्व करती है। शाति और समृद्धि के लिए यह एक चुनौती है। इस चुनौती का सामना करने के लिए समस्त राष्ट्रो के समस्त लोगो का प्रयत्न करना आवश्यक है।

: ७ :

उपसंहार

बहुत पुरानी बात है, कही एक बुद्धिमान राजा था। उसकी इच्छा हुई कि मै अपनी प्रजा के लिए कुछ नियम बना दू। उसने एक हजार भिन्न-भिन्न जातियो मे से एक हजार विद्वान् व्यक्ति चुनकर बुलाये और उनकी सलाह से नियम बनाये गए।

एक दिन जब वे हजार कानूनी नियम राजा के सामने रखे गये और उसने उन्हे पढा तो उसका हृदय रो पडा। उसने कभी सोचा भी न था कि उसके राज्य मे हजार प्रकार के अपराध प्रचलित है। तब उसने अपने अहलकार को बुलाया और मुस्कराते हुए स्वय कुछ कानूनी नियम लिखवा दिये। वे गिनती मे केवल सात थे।

वे विद्वान लोग नाराज होकर अपने-अपने देश लौट गये और उनके बनाये हुए कानून उनकी जातियो मे चलने लगे। परिणामस्वरूप आज भी हजारो कानून प्रचलित है। आज भी हजारो बदीगृह है और उनमे कानून तोडनेवाले हजारो स्त्री-पुरुष भरे पडे है।

खलील जिब्रान की इस कहानी का अर्थ स्पष्ट है कि विधि-विधानो की बहुलता समस्या को और भी उलझा देती है। क्या ही अच्छा होता कि इतने 'अधिकारो' के स्थान पर हम एक अधिकार पर सहमत हो पाते। गाधीजी ने कहा था, "कर्त्तव्य के अतिरिक्त मै किसी और अधिकार की बात नही जानता।"

'कर्त्तव्य' ही एक अधिकार है। कहा जा सकता है कि यह एक हवाई आदर्श है, परतु जब हम व्यक्ति को समाज के अग के रूप मे देखते है तो फिर कुछ समझने को शेष नही रहता।

हमारा लक्ष्य क्या है ? क्या हमे केवल अपनी ही फिक्र करनी चाहिए या समाज, देश और मनुष्य जाति की भलाई की चिता करनी चाहिए। मानना होगा कि सार्वजनिक हित मे ही हमारी भलाई छिपी हुई है। 'पचतत्र' मे एक श्लोक आता है—

त्यजेदेक कुलस्यार्थे, ग्रामस्यार्थे कुल त्यजेत् ।

ग्राम जनपदस्यार्थे, आत्मार्थे पृथिवी त्यजेत् ।।

कुल के लिए व्यक्ति को, समाज के लिए कुल को, देश के लिए समाज को और आत्मा के लिए सारी दुनिया को छोड देना चाहिए। आत्मा का अर्थ अपने-अपने खयाल के अनुसार अलग-अलग हो सकता है, लेकिन यहा इसका अर्थ यही है कि मनुष्य को सहयोग और सार्वजनिक हित के लिए अपने स्वार्थ का बलिदान कर देना चाहिए। जब भागवतकार यह कहता है— "मुझे न तो स्वर्ग की इच्छा है, न जन्म और मृत्यु से छुटकारा पाकर मोक्ष पाने की ही कामना है, मेरी इच्छा तो यह है कि दुखी जनो के दिलो मे पैठ जाऊ और उनका दु ख-दर्द अपने ऊपर ले लू जिससे वे पीडा से मुक्त हो जाय।"—तो वह अपने 'मै' को इसी सार्वजनिक रूप मे देखना चाहता है। जब हम कर्त्तव्य और त्याग की बात करते है तो 'मै' के अतिरिक्त किसी 'दूसरे' का अस्तित्व स्वीकार करते है। यही समाज का जन्म होता है। महाभारत मे लिखा है—'यह सारा मृत्युलोक एक परस्पर आश्रित सगठन है।' ऐसे सगठन मे व्यक्ति केवल अपनी ही बात नही कर सकता। इसीलिए वेद का आदेश है कि अगर हम चाहते है कि सारी दुनिया हमारी ओर मित्र की निगाह से देखे तो हम भी सारी दुनिया को मित्र की निगाह से देखे।

मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् ।

मित्रस्याह चक्षुषा सर्वाणि भतानि समीक्षे ।।

गीता ने इस बात को और भी स्पष्ट किया है। उसने प्राणिमात्र को सम-भाव से देखने की बात कही है।

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिता समदर्शिन ॥

अर्थात् ज्ञानी-जन विद्या और विनय-युक्त ब्राह्मण मे तथा गौ, हाथी, कुत्ते और चाण्डाल मे भी सम-भाव से देखनेवाले होते है ।

इसी सम-भाव को वेदात कहते है । जो मनुष्य सर्वत्र परमेश्वर के अस्तित्व को समान रूप से देखता है वह वेदात को समझता है । विनोबा के अनुसार यही वेदात ससार का भावी धर्म है ।

एक दिन शकराचार्य गगा-तट पर जा रहे थे । राह मे उन्हे एक चाण्डाल मिला । शकर ने यह देखकर पुकारा "अरे दूर हट, दूर हट ।' लो, चाण्डाल हटना तो दूर, खिलखिला पडा, बोला, "आप तो मानते है कि ब्रह्म और जीव एक है । तब आप किसे दूर हटा रहे है । सूरज का प्रकाश सबपर एकसा पडता है । 'मै ब्राह्मण हू और तू चाण्डाल, तू दूर हट,' यह झूठा आदेश है । सब शरीरो मे एक समान रहनेवाले भगवान को आप भूल रहे है ।"

यह सुनकर शकर की आखे खुल गई । उन्होने उस चाण्डाल को अपना गुरु माना, क्योकि वह मानता था, जो चेतनता विष्णु शिव आदि देवताओ मे है वही कीडे, मकोडे आदि छोटे जीवो मे भी है । सबको आपस मे प्रेम करना चाहिए । जब सबमे एक ही ज्योति है तो किसका आदर और किसका अनादर ? हम और हमारे पडोसी एक ही है । पडोसी की सहायता अपनी सहायता है । स्वार्थ और परमार्थ मे कोई अतर नही ।

वेदात की इस व्याख्या को समझे बिना मानव-अधिकारो की सार्वभौम घोषणा को मूर्त रूप नही दिया जा सकता । अशोक ने इसे समझा था तभी उसने आदेश दे रखा था—"सब समय और सब तरह, चाहे मै खाना खाता हू, चाहे रनवास मे

हू, चाहे अपने शयन मे रहू या स्नान मे, सवारी पर रहू या महल के बाग मे, सरकारी कर्मचारी जनता के कार्यो के बारे मे मुझे बराबर सूचना देते रहे। जिस समय भी हो, जहा भी हो, मै लोक-हित के काम करूगा।"

भारत के गणतंत्र और प्राचीन ग्राम-पचायते सभी इस विचार से अनुप्राणित थे। हमारा वर्तमान विधान भी इसी सार्वभौम सहिष्णुता के आधार पर बनाया गया है। उसका उद्देश्य अपने नागरिको के लिए इन बातो को सुरक्षित करना है—सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार-अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समानता प्राप्त करना और इन सबमे व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता सुनिश्चित करनेवाली बन्धुता बढाना।

इसके बाद भेदभाव का कोई प्रश्न ही नही रह जाता। इसीलिए अस्पृश्यता, चाहे किसी भी रूप मे हो, कानून के समक्ष एक अपराध है। मानव-अधिकारो की सार्वभौम घोषणा मे कहा गया है कि सभी मानव स्वतत्र और समान है। डाक्टर अम्बेडकर भारतीय सविधान के प्रमुख निर्माता थे। परन्तु जन्म से वह अछूत थे। फिर भी वह आधुनिक मनु बन सके। क्या यह इस बात का ज्वलन्त प्रमाण नही है कि भारत मे नई चेतना कितनी तेजी से विकसित हो रही है।

इसी प्रकार आज के भारत मे नारी किसी भी दृष्टि से पुरुष से पीछे नही है। सार्वजनिक जीवन के अनेक गौरवपूर्ण पदो पर वह काम कर रही है। विजयलक्ष्मी पडित तो स्वय सयुक्त राष्ट्र की अध्यक्षा बन चुकी है। सार्वभौम घोषणा मे धर्म और विचार की जिस स्वतत्रता की चर्चा की गई है, हमारे सविधान मे उसका पूरा समावेश हुआ है। सम्राट् अशोक के धर्म-चक्र को हमने अपना प्रतीक बनाया है। वह सहिष्णुता का प्रतीक है। हमारा राज्य सेक्युलर स्टेट है। इस अग्रेजी शब्द से कई बार भ्रम पैदा हो जाता है। इसका अर्थ धर्महीनता नही, बल्कि सब धर्मो

को समान भाव से देखना है। जिस वेदात की हमने ऊपर चर्चा की है, वह यही है और इसीलिए विनोबा ने भारत सरकार को वेदाती सरकार कहा है। स्वय विनोबा भी मानव-अधिकार की
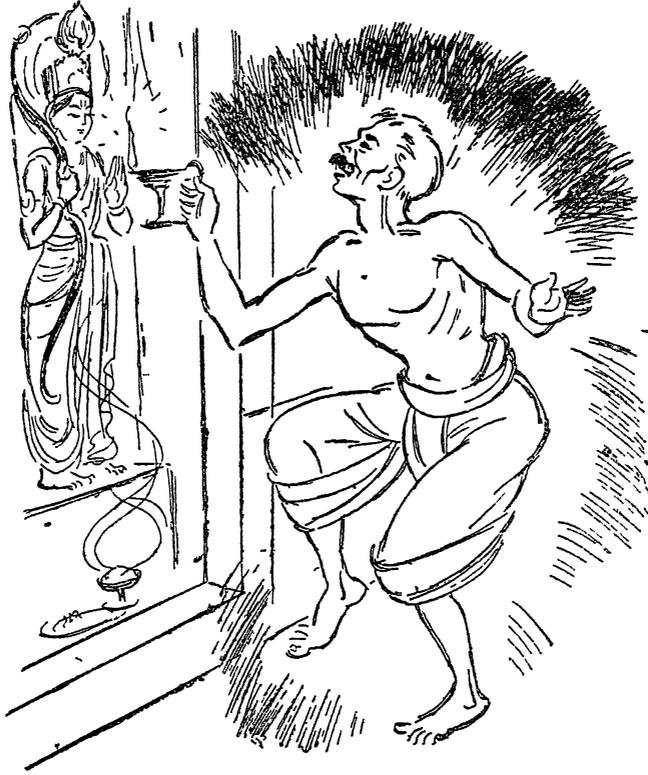
मन्दिर मे आरती करता हुआ अछूत

रक्षा के लिए भूदान-आन्दोलन का सचालन कर रहे है। उसका मूल उद्देश्य धरती पर सभी मानवो के समान अधिकार को स्थापित करना है।

स्वाधीनता-संग्राम की अमर वीरांगना झांसी की रानी लक्ष्मीबाई

युद्ध से त्रस्त आज के ससार मे शाति की पुकार मची हुई है, उसको चरितार्थ करने के लिए हमारे प्रधानमत्री पडित जवाहरलाल नेहरू ने पचशील का मार्ग सुझाया है। पचशील अर्थात् शातिपूर्ण सह अस्तित्व, अर्थात् दूसरे का सम्मान, दूसरे के अधिकारो का सम्मान आवश्यक है। किसीको हीन बनाकर समानता की कल्पना नही की जा सकती। आज विश्व दो विरोधी गुटो मे बटा हुआ है। किंतु दोनो को अपने-अपने विनाश का डर है, क्योकि दोनो ने विज्ञान के क्षेत्र मे असीम प्रगति कर ली है। पर विज्ञान की सहारक शक्ति न किसी क्षेत्र-विशेष तक सीमित रह सकती है, न राष्ट्र-विशेष तक। एटम बम और हाईड्रोजन बम आज इतनी सख्या मे मौजूद है कि उनका उपयोग कोई भी विजय के लिए नही कर सकता। यह केवल पराजय, समस्त मानवता की पराजय, के प्रतीक बन गये है। और यही भय का कारण है। लेकिन क्या यह सत्य नही है कि इस भय ने, जिसे हम 'समान भय' कह सकते है, 'समान साधना' को जन्म दिया है। इसने पूर्व और पश्चिम, काले और गोरे सबको पास ला दिया है। आज की दुनिया जितनी एक है, जितनी सहयोग की भूखी है, उतनी पहले कभी न थी। आज का वैज्ञानिक भी अपने सामाजिक दायित्व के प्रति सजग है। आइन्सटाइन ने किसीसे कहा था, "तीसरा महायुद्ध किन हथियारो से लडा जायगा, यह तो मुझे नही मालूम, परतु चौथा महायुद्ध होने की नौबत आई तो धनुषबाण से लड़ा जायगा।"

इन शब्दो मे विज्ञान के दुरुपयोग के भयानक परिणाम की ओर सकेत है।

औद्योगिक क्राति, परिवहन और सचार के साधन और अतर्राष्ट्रीय वाणिज्य इन सभीने मिलकर एक दुनिया का निर्माण करने मे योग दिया है। इसके अतिरिक्त अनेक सामाजिक और आर्थिक अतर्राष्टीय आदोलन तथा विज्ञान के कारण निकट

भविष्य मे 'अतरिक्ष-यात्रा' की सभावना, इन सबने भी हमारी दुनिया को एक बनाने का प्रयत्न किया है। लेकिन इससे हमारे दिल एक नहीं हो सके थे। दिलो को एक करने का काम 'समान भय' कर रहा है। मानवता की पराजय का भय कर रहा है।

'समान भय' के कारण शाति की जो पुकार उठी है, वह परस्पर के मेल के बिना चरितार्थ नही हो सकती। शाति का अर्थ ही है परस्पर मेल और सद्भावना। आज हम विरोधी आदर्श और सस्कृतिवाले एक-दूसरे को जानने और समझने के लिए आतुर है, लेकिन दूसरे को तभी समझा जा सकता है जब हम सकुचित मनोवृत्ति को छोडे। अपनी श्रेष्ठता को भूले और दूसरे के दृष्टिकोण को समझे। पचशील का यही उद्देश्य है और आरभ मे हमने जिस भारतीय वेदात की चर्चा की है, वह भी यही है, और इसीको मानव-अधिकारो की सार्वभौम घोषणा मे प्राप्त करने की चेष्टा की गई है।

विज्ञान के इस युग मे 'भावना' और 'आदर्श' का कोई बहुत मूल्य नही माना जाता। लेकिन यदि विज्ञान हमे इतना भौतिकवादी बना देता है कि हम मानवता के उच्छ्वासो का, और मानवता ही क्या, फूल-पत्तियो के उच्छ्वासो का स्पदन अपने हृदय मे न सुन सके तो आइन्स्टाइन के उस फार्मूले का अध्ययन बेकार है जो सहति और ऊर्जा (मैटर और एनर्जी) के पारस्परिक रूपातरण की स्थिति के द्वारा अतीद्रिय प्राण-लोक की सभावना से साक्षात्कार कराता है।

तो यह है दुनिया, जिसके हम स्वामी बनाना चाहते है। यह है ससार जिसमे प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक सरकार को ही नही, बल्कि सामूहिक रूप से सबको नया रास्ता खोजना है। हमारी समस्या है कि मानव ने मानव के लाभ के लिए जो बनाया है, उसका विनाश के बजाय और कैसे इस्तेमाल करे। इसीका मार्ग मानव-अधिकारो की विश्व-व्यापी घोषणा मे सुझाया गया है। सभवतः

मानव-इतिहास मे पहली बार ससार के इतने राज्यो के प्रतिनिधियो ने एकत्रित होकर इस बात पर सहमति प्रकट की है कि कुछ अधिकार ऐसे है जो किसी एक राष्ट्र या दल की बपौती नही है, बल्कि मानव के रूप मे मानवमात्र का उनपर अधिकार है। सयुक्तराष्ट्र सघ ने इस बात की घोषणा की है कि लोगो को यह अधिकार इसलिए प्राप्त नही हुए कि वे अग्रेज है या अरब, ईसाई है या बौद्ध, एस्कीमो है या दक्षिणी समुद्र के द्वीपो के रहनेवाले, बल्कि इसलिए हुए है कि वे मानव है। सार्वभौम घोषणा वस्तुतः इस बात की घोषणा करती है कि प्रत्येक व्यक्ति को पूरी तरह और पूरे सुख के साथ जीने का अवसर मिलना चाहिए।

तब क्या आज की स्थिति मे प्रत्येक प्राणी का यह कर्तव्य नही हो जाता कि मानव-अधिकारो की इस सार्वभौम घोषणा को अधिक प्रचारित करने और व्यावहारिक रूप देने मे योग दे? इस घोषणा का अच्छी तरह अध्ययन करे और अपने देश मे प्रचलित विधि-विधानो और रीति-रस्मो से इसकी तुलना करे। फिर सोचे कि इस घोषणा के लिए कौन-से परिवर्तन करने की आवश्यकता है। स्वय भी आत्म-निरीक्षण करे और अपने से यह प्रश्न पूछे कि क्या हम अपने कुटुम्बीजनो को, अपनी जाति और उन लोगो को, जिनके साथ हम काम करते है, ये अधिकार दे रहे है। ऐसा करके हम दूसरो के लिए उदाहरण प्रस्तुत करेगे। सिद्धान्त मे तो बहुत-सी बाते हमने स्वीकार की है, लेकिन जबतक उनको व्यवहार मे परिवर्तित नही करेगे तबतक वे सिद्धान्त, चाहे कितने भी ऊचे क्यो न हो, निकम्मे ही साबित होगे। क्या हम अपने सिद्धान्तो को निकम्मा साबित होने देगे? यह एक चुनौती है। विनाश की जो ताकते आज सारे ससार को भय से त्रस्त कर रही है वे ही उसे अनान्द और उमग से भर सकती है। जो विज्ञान महानाश का प्रतीक है वही महानिर्माण और अनन्त सुख का भण्डार भी है। लेकिन हमे यह समझना आवश्यक है

कि उसके पास गति है, दिशा नही। दिशा मनुष्य के हाथ मे है, अर्थात् हमारे हाथ मे है। मानव-अधिकारो की सार्वभौम घोषणा मे उसी दिशा का सकेत है। उमी दिशा को समझना हमारा कर्त्तव्य है और अधिकार भी।

○